अब्राहम लिंकन की
वाणी

मुख-पृष्ठ पर संयुक्तराज्य अमेरिका के सोलहवें राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का जो चित्र दिया गया है, वह संयुक्तराज्य के चौंतीसवें राष्ट्रपति ड्वाइट आइज़ेनहावर ने बनाया था । चित्रकला में श्री आइज़ेनहावर को विशेष रुचि रही है ।

अब्राहम लिंकन की वाणी

एक महान् अमेरिकी के
लेखों और भाषणों का संकलन

भू मि का

'हम जो कह रहे हैं वह न कोई सुनेगा न हमेशा याद रखेगा।'

ये शब्द अब्राहम लिंकन ने गेटिसबर्ग (पैनसिलवेनिया) में १९ नवम्बर १८६३ को सच्ची विनम्रता से कहे थे। हृदय से वह ऐसा ही मानते थे। जिस स्थल पर लोगों ने एक चिरस्मरणीय गृह-युद्ध में वीरगति पायी हो वहाँ पर लिंकन के मुख से निकले हुए कुछ सीधेसादे शब्दों को लोग याद रखें, यह आशा कैसे की जा सकती थी?

किन्तु यहाँ पर लिंकन ने भूल की थी। जो सरल वाक्य उन्होंने उस दिन कहे वे आज भी लोगों को याद हैं और उस काल तक याद रहेंगे जब तक वे आदर्श, जो उस प्रसिद्ध गेटिसबर्ग-भाषण में समर्थ और सप्राण भाषा में प्रतिपादित किये गये थे, जीवित रहेंगे।

अपने गेटिसबर्ग-भाषण के ही नहीं अपने जीवन के अन्य भाषणों और लेखों के विषय में भी लिंकन का यही विचार था कि वे 'चिरस्मरणीय' नहीं होंगे। जब वह संयुक्त राज्य-अमेरिका के राष्ट्रपति थे और जब राष्ट्र अमेरिका की स्थापना के बाद, सबसे अधिक विकट परिस्थिति से गुजर रहा था, वह निश्चय ही जानते थे कि वह इतिहास को रूप दे रहे हैं। अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति सचेत होकर वह अपने देशवासियों के सम्मुख भाषण करने के लिए सोच समझ कर शब्द चुनते थे। परन्तु वह जो कुछ कहते थे वह उस काल और स्थान के नर-नारियों के हृदय में प्रवेश करता था।
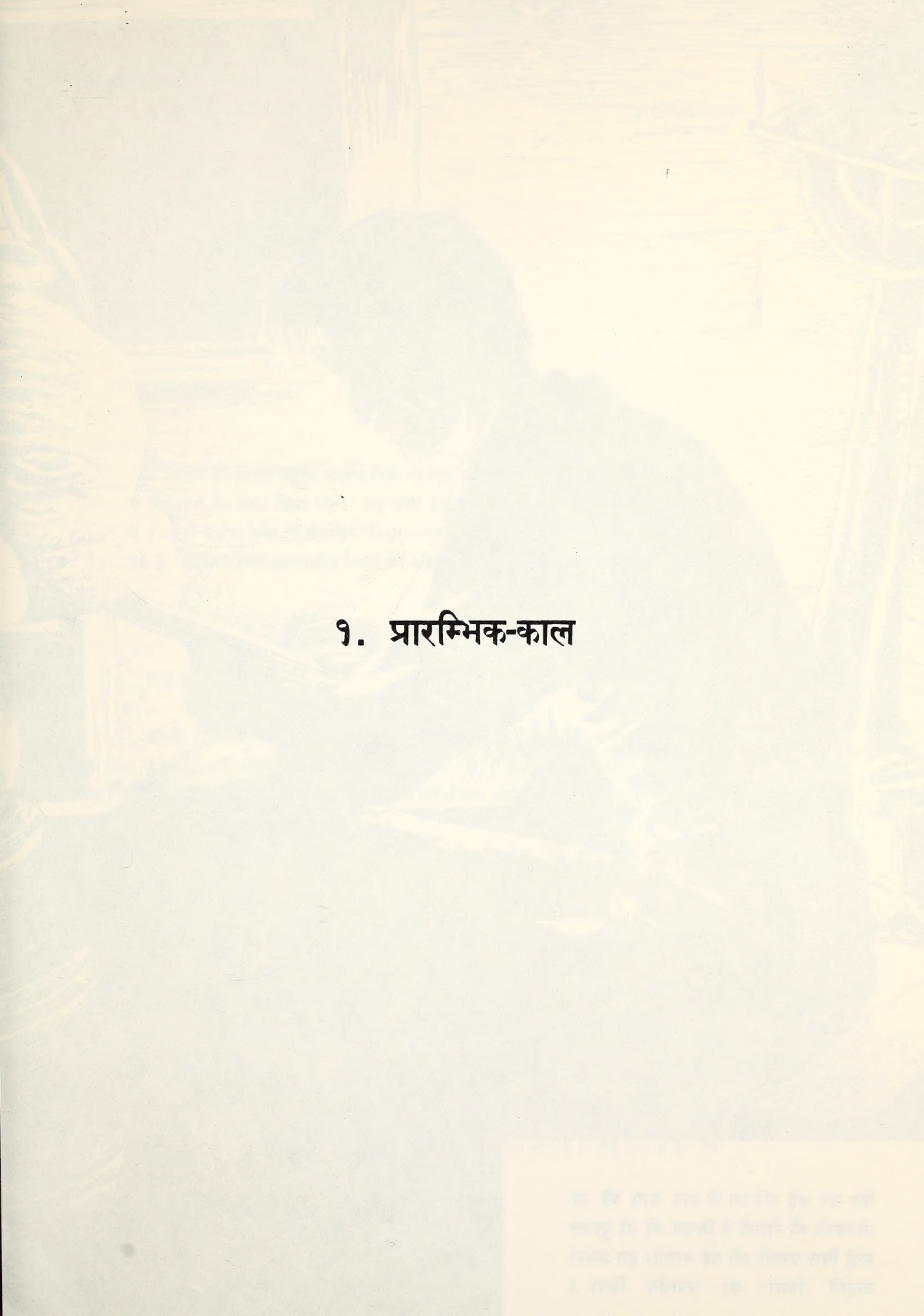
'जनता की, जनता द्वारा और जनता के हेतु सरकार' के प्रधान कार्य-वाहक की हैसियत से वह अपने देशवासियों को प्रभावित करना और उन्हें सही मार्ग का अनुसरण करने में सहायता देना चाहते थे। उनके भाषणों और लेखों का यही उद्देश्य था। उस निश्छल निरभिमानी व्यक्ति को, जिसके हृदय से कुछ ही वर्ष पहले एक मित्र के सम्मुख ये शब्द निकले थे कि—'सच कहूँ तो मैं अपने को राष्ट्रपतित्व के योग्य नहीं समझता', कभी यह गुमान भी नहीं हो सकता था कि अमेरिका में ही नहीं सारे संसार में आने वाली असंख्य पीढ़ियाँ उसके शब्दों को पढ़ेंगी और सुनेंगी।

और आज जबकि लिंकन के निधन को सौ वर्ष हो चुके हैं और इस अवधि में, उनके राष्ट्रपतित्व ही नहीं सम्पूर्ण जीवन काल में उनके मुख से अथवा लेखनी से निकला हुआ प्रत्येक शब्द उत्साहपूर्वक संग्रहीत एवं मनोयोग-पूर्वक सुरक्षित, प्रकाशित और पुनः प्रकाशित किया जा चुका है। लिंकन के एक प्रसिद्ध जीवनी-लेखक कार्ल सैंडबर्ग ने लिखा है कि लिंकन के प्रकाशित भाषणों और लेखों का परिमाण १०,७८,३६५ शब्द तक पहुँच चुका है।

आगामी पृष्ठों में लिंकन की एक सौ पचासवीं जयन्ती के उपलक्ष में अमेरिकी जनता के उस महान दाय से—शब्द और भाव के इस रत्नाकर से चुने हुए खण्ड संग्रहीत हैं।

इन पृष्ठों में, लिंकन की समस्त रचनाओं के विख्यात सम्पादक रॉय पी. बेसलर के शब्दों में कहा जाय तो—'उस उदात्त आत्मा की गरिमा प्रकट होती है जो निरन्तर सिद्धांत की सत्यता, कर्म की शिवता और वाणी की सुन्दरता की साधना करती रही। वह एक सृजनात्मक चेतना है और उसमें १९वीं शताब्दी के अमेरिका का यथार्थ बसा हुआ है। यह यथार्थ लिंकन से अनन्य है और उस का संप्रेषण अपूर्व है, इसलिए लिंकन के शब्द भी अमर हैं और जिस युग में लिंकन ने विकास पाया उसके अनुपम प्रतीक और सम्पूर्ण प्रतिनिधि हैं। यही कारण है कि जब हम लिंकन का अध्ययन करते हैं तो वह प्राचीन काल के श्रेष्ठ साहित्यिकों की भाँति कुछ मानवेतर प्रतीत होते हैं। उनके कार्यों का पार्थिव महत्त्व समय द्वारा नष्ट हो जा सकता है परन्तु उनके शब्दों को भासित करने वाली उज्ज्वल ज्योति हमारे लिए सदैव ज्ञेय और स्वीकार्य रहेगी।'

नोट : श्री रॉय पी. बेसलर का यह उद्धरण 'अब्राहम लिंकन : हिज़ स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स' नामक पुस्तक की भूमिका से लिया है। श्री बेसलर द्वारा सम्पादित यह पुस्तक 'वर्ल्ड पब्लिशिंग कम्पनी' ने प्रकाशित की है (कापी राइट १९४६) जिनसे उद्धरण के लिए अनुमति ले ली गयी है।

१. प्रारम्भिक-काल

दिन भर कड़े परिश्रम के बाद आग की या मोमबत्ती की रोशनी से लिंकन जो भी पुस्तक उन्हें मिल सकती उसे पढ़ डालते; इस प्रकार उन्होंने विद्या का उपार्जन किया ।

प्रथम सार्वजनिक भाषण

लिंकन ने अपना पहला सार्वजनिक भाषण इलिनाय विधान सभा के चुनाव में खड़े होने के समय दिया था। यह बात १८३२ की है, जब वह तेईस वर्ष के थे। यहाँ उद्धृत अंश में स्थानिक विधान-रचना सम्बन्धी उनके विचार छोड़ दिये गये हैं, केवल उनकी तत्कालीन प्रवृत्तियों और रुचियों का आभास दिया गया है।

बन्धु नागरिको :

आपके राज्य की अगली विधान सभा में आपके प्रतिनिधि जैसे सम्माननीय स्थान के लिए खड़े होने पर, सच्ची लोकतन्त्रवादिता के और साथ ही प्रचलित रीति के अनुसार मेरा कर्तव्य हो गया है कि आप से, जिनका मैं प्रतिनिधित्व करना चाहता हूँ, स्थानिक मामलों के सम्बन्ध में अपने विचार मैं प्रकट कर दूँ।

समय और अनुभव ने प्रमाणित कर दिया है कि देश की आन्तरिक व्यवस्था में सुधार करना सार्वजनिक हित में कितना उपयोगी है। इससे कौन इन्कार कर सकता है कि अच्छी सड़कें बन जायें, और अपनी सीमा के अन्तर्गत नौ सन्तरण योग्य नहरें खुल जायें तो निर्धनतम और विरलतम जनसंख्या वाले देशों का अत्यन्त भला होगा। तथापि इस प्रकार के अथवा किसी भी प्रकार के कार्य बिना यह सोचे हाथ में ला ले मूर्खता है कि हम उन्हें सम्पूर्ण कैसे कर पायेंगे—क्योंकि अधूरे काम का मतलब बहुधा यही होता है कि मेहनत बेकार गयी।

शिक्षा के विषय में कोई योजना या पद्धति निर्दिष्ट करने का दम्भ तो मैं नहीं करता, हाँ इतना अवश्य कहता हूँ कि एक जाति की हैसियत से हम जिन कार्यों को महत्त्व दे सकते हैं उनमें यह सर्वप्रमुख है। प्रत्येक व्यक्ति कम से कम सामान्य शिक्षा पा ले ताकि वह अपने और दूसरे देशों के इतिहास पढ़ कर हमारी स्वातन्त्र्य-परम्पराओं का तात्पर्य पूर्ण रूप में समझ सके, इतना अपने-आप में एक अत्यन्त आवश्यक प्रयोजन है। यह तो है ही कि

विद्यालाभ करके लोग धार्मिक और नैतिक ग्रन्थों को पढ़ेंगे और स्वयं परिप्लुत और लाभान्वित होंगे। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब विद्या और प्रकारान्तर से नैतिकता, गम्भीरता, उत्साह और उद्योग, आज की अपेक्षा कहीं व्यापक होंगे, एवं उस सुखमय दिन को शीघ्र लाने वाले किसी भी कार्य में थोड़ा योग दे सकने की शक्ति मुझे मिले, तो मैं कृतार्थ होऊँगा .....

युवकों के लिए जैसी विनम्रता उचित है, उसकी दृष्टि से मैं शायद कुछ अशोभन बात कह गया हूँ। किन्तु, जिन विषयों का मैंने उल्लेख किया है उनके सम्बन्ध में जो सोचता हूँ वही कह दिया है। हो सकता है उनमें से किसी के या सब के बारे में मेरे विचार गलत हों, किन्तु इसे सुनीति मानते हुए कि केवल कभी-कभी सही होना हमेशा गलत होने से अच्छा है, यदि कभी भी मुझे अपने ये विचार त्रुटिपूर्ण लगे तो मैं उन्हें त्याग देने को तैयार रहूँगा।

कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक विशेष महत्वाकांक्षा होती है। न जाने यह सत्य है अथवा नहीं, परन्तु अपनी कहूँ तो मेरी और कोई आकांक्षा इतनी प्रबल नहीं है जितनी अपने देशवासियों के आदर का पात्र बन कर उन का सच्चा आदर प्राप्त करने की है। इस आकांक्षा को कहाँ तक तुष्ट कर पाऊंगा, यह अभी नहीं कहा जा सकता। मैं तरुण हूँ और आप में से अनेक का अपरिचित हूँ। मैं एक विपन्न परिवार में उत्पन्न हुआ और मेरा जीवन साधारण ही रहा है। मेरे कोई धनाढ्य या सुप्रसिद्ध सम्बन्धी नहीं हैं जिस से मैं योग्य समझा जाऊं। मैं एकान्त रूप से इस देश के स्वतन्त्र-चेता मत-दाताओं के सहारे हूँ, और यदि मुझे चुना गया तो यह उन की कृपा होगी, जिस का प्रतिदान देने में मैं शिथिल न होऊँगा। पर यदि सज्जन-समाज अपनी समझ में मुझे पीछे ही रखना उचित मानें तो मैं हताश होने का इतना अभ्यस्त हो चुका हूँ कि मुझे बहुत क्षोभ न होगा।

आपका मित्र और बन्धु नागरिक
अ० लिंकन

न्यू सलेम, मार्च ९, १८३२

राजनीतिक प्रश्नों पर

१८३९ तक अर्थात् ३० वर्ष की वय तक पहुँचते-पहुँचते लिंकन अपने राज्य के एक मान्य राजनीतिज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। उस वर्ष दिसम्बर में, स्प्रिंगफील्ड में प्रतिनिधि-सभा के सभा-कक्ष में उन्होंने सामयिक राजनीतिक प्रश्नों पर भाषण किया। यह भाषण घोर पक्षधर था, क्योंकि लिंकन प्रबल 'ह्विग' बन चुके थे—यह तत्कालीन पार्टी आज अमेरिका में लोप हो चुकी है तथापि इस भाषण में उनकी सैद्धान्तिक निष्ठा की दृढ़ता अवश्य झलकती है। उसका अंतिम अंश है :

श्री लैम्बर्न राज्यों के पिछले चुनाव का जिक्र करते हैं और उनके नतीजों के आधार पर निश्चयपूर्वक घोषणा करते हैं कि अगले राष्ट्रपति के चुनाव में संघ का प्रत्येक राज्य श्री वान ब्यूरेन को मत देगा। यह तर्क कायरों को और कमीनों को दें: स्वतन्त्र और साहसी लोगों के सामने वह न चलेगा। हो सकता है उनकी बात सच निकले। पर यदि निकलती ही है तो निकले। अनेक स्वतन्त्र देशों ने अपनी स्वाधीनता खोयी है और हमारा देश भी खो दे सकता है। पर यदि खोये तो मेरी कीर्ति इस में न हो कि मैंने अन्त में पीठ दिखायी, बल्कि इस में कि मैंने कभी पीठ नहीं दिखायी। मैं जानता हूँ कि वाशिंगटन का विराट ज्वालामुखी, वहाँ की अधिष्ठित पाप-देवता द्वारा उत्तेजित और निर्देशित होकर, राजनीतिक भ्रष्टाचार रूपी अग्नि उगल रहा है। जिसकी चौड़ी और गहरी धारा, रत्ती-भर हरियाली और एक भी जिन्दा चीज बाकी न छोड़ने का निश्चय किये, देश की छाती पर भयंकर गति से दौड़ती चली जा रही है और उसकी लहरों पर, रौरव की लहरों पर सवार दानवों की भाँति, उस पाप-देवता के गण नृत्य करते हुए उन सब के प्रयत्नों की निस्सारता पर व्यंग्य कर रहे हैं जो इस विनाशिनी धारा को रोकने का हौसला करते हैं। और यह जान कर मैं यह भी कहता हूँ कि हो सकता है कहीं कोई भी बाकी न बचे। उसके हाथों में भी टूट जा सकता हूँ, पर झुकूँगा कभी नहीं। यह सम्भावना, कि हम संघर्ष में हार सकते हैं, हमें उस उद्देश्य का पक्ष लेने से क्यों रोके जिसे हम सत्य मानते हैं? मुझे नहीं रोकेगी। यदि मैं अपनी आत्मा को उन सीमाओं तक कभी भी पहुँचता पाता हूँ जो सृष्टिकर्ता की कृति कहलाने के एकदम अयोग्य नहीं हैं, तो तभी पाता हूँ जब मैं अपने देश का स्मरण करता

हूँ और देखता हूँ कि उसका साथ सारी दुनिया छोड़ गयी है तो भी जयोन्मुख आततायियों का प्रतिरोध करता मैं, निर्भय, अकेला खड़ा हूँ। आज, निस्संशय मन से, परमात्मा के समक्ष और सकल संसार के सम्मुख, मैं शपथ लेता हूँ कि अपने प्राण, अपनी स्वाधीनता और अपने हृदय के स्वामी इस देश की इस मर्यादा की रक्षा के लिए, जिसका मैं समर्थक हूँ, चिरकाल तक कर्तव्यरत रहूँगा। और कौन है वह, जो इन विचारों से सहमत होगा और निर्भय होकर यही प्रतिज्ञा न करेगा जो मैंने की है ? जिसे अपने मन पर विश्वास है, वह अडिग रहे तो हम सफल होंगे। किन्तु अन्ततः विफल भी रहे तो सोच नहीं। हम अपनी आत्मा से और अपने देश की अपहृत स्वाधीनता से सगर्व कह सकेंगे कि विपत्ति में, कारावास में, यन्त्रणा में, मृत्यु में जिस लक्ष्य को हमने बुद्धि से सत्य माना था और हृदय में प्रतिष्ठित किया था, उसकी रक्षा में हम विचलित नहीं हुए।

धार्मिक विचार

सन् १८४६ में, जब लिंकन संयुक्तराज्य कांग्रेस के उम्मीदवार थे, उन्हें चुनाव में सफल होने पर भी जनता के सामने इस आरोप का उत्तर देना पड़ गया कि वह धर्म की खिल्ली उड़ाते हैं।

सातवें चुनाव-प्रदेश के मतदाताओं के नाम

बन्धु नागरिको,

इस जिले के पास-पड़ोस में इस आशय का आरोप प्रचारित देख कर कि मैं ईसाई धर्म का खुले आम तिरस्कार करता हूँ, मैंने कुछ मित्रों की सलाह से इस सम्बन्ध में प्रस्तुत रूप में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करना स्थिर किया है। यह सत्य है कि मैं किसी ईसाई चर्च का सदस्य नहीं हूँ, परन्तु मैंने धर्मग्रन्थों की सत्यता का कभी प्रतिवाद नहीं किया है, और मैंने धर्म के अथवा ईसाई धर्म के किसी सम्प्रदाय के प्रति जानबूझ कर अनादर-सूचक कोई शब्द कभी नहीं कहा है। यह सत्य है कि प्रारम्भ में मेरी प्रवृत्ति उस विश्वास की ओर थी जिसे मुझे बताया गया कि 'आपद्धर्म' कहा जाता है अर्थात् यह विश्वास कि

मानव-बुद्धि किसी ऐसी शक्ति के हाथों संचालित अथवा शासित होती है जिस पर स्वयं बुद्धि का कोई वश नहीं है, और मैंने कभी-कभी (एक-दो, या तीन के साथ, पर सार्वजनिक रूप से कभी नहीं) तर्क से इस धारणा को सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है। जो हो, इस प्रकार तर्क करने की आदत भी मैं पांच वर्ष से अधिक हुआ पूर्णतया छोड़ चुका हूँ—और यहां यह भी कह दूँ कि मुझे सदैव ज्ञात रहा है कि यही धारणा अनेक ईसाई सम्प्रदायों की है। इस विषय में मुझसे सम्बद्ध सम्पूर्ण सत्य इतना ही है जिसे मैंने संक्षेप में बता दिया है।

मैं नहीं मानता कि मैं स्वयं किसी ऐसे उम्मीदवार का समर्थन कर सकता हूँ जिसे मैं जानता हूँ कि वह धर्म का माना हुआ शत्रु और निन्दक है। उसके और उसके परम पिता के मध्य क्या कुछ होगा, शाश्वत प्रश्न को छोड़ें; मैं तो यह भी नहीं मानता कि किसी व्यक्ति को अपने समाज के नैतिक आदर्शों पर आघात करने और उसकी भावनाओं को कुण्ठित करने का कोई अधिकार है। अतएव, यदि मैं स्वयं ऐसे पाप का भागी माना जाऊँ तो मैं उसको दोष नहीं देता जो मुझे अपराधी ठहराता है, उन्हें अवश्य दोष देता हूँ—वे चाहें जो हों—जिन्होंने मेरे प्रति इस मिथ्या आरोप का प्रचार किया है।

अ० लिंकन

जुलाई ३१, १८४६

एक सम्बन्धी को परामर्श

जैसा कि सर्वविदित है, लिंकन दरिद्र परिवार के पुत्र थे और जैसे-जैसे उन्होंने उन्नति की, परिवार के अन्य व्यक्ति बहुधा सहायता के लिए उनका मुँह जोहते रहे, और सहायता उन्होंने अपनी हैसियत भर, उदारतापूर्वक प्रायः दी। फिर भी सन् १८४८ के इस पत्र में, जो उन्होंने वाशिंगटन में कांग्रेस सदस्य के रूप में रहते हुए लिखा था उन्होंने अपने किसी सम्बन्धी की सहायता-याचना के उत्तर में कुछ सत्परामर्श दिया है।

प्रिय जानस्टन :

मैं नहीं समझता कि तुमने जो अस्सी डालर मांगे हैं वह भेज देना ही इस समय सबसे अच्छा होगा। जब कभी मैंने तुम्हारी यत्किंचित् सहायता की है, तुमने मुझसे कहा है—"अब हमारा काम भली प्रकार चल रहा है।" परन्तु स्वल्प काल में ही मैंने तुम्हें फिर कठिनाई में

पाया है। यह निश्चित रूप से तुम्हारे आचरण की किसी त्रुटि के कारण होता है। वह त्रुटि क्या है, शायद मैं जानता हूँ। तुम आलसी न होकर भी कामचोर हो। मुझे विश्वास नहीं कि जब तुम से पिछली बार भेंट हुई थी तब से आज तक तुमने किसी भी दिन पूरे दिन लग कर काम किया है। तुम्हें काम करने से खास अरुचि नहीं है और फिर भी तुम काफी काम नहीं करते, क्यों कि तुम्हें यह नहीं लगता कि उससे तुम काफी कमा सकते हो। वृथा समय नष्ट करने की यह आदत ही सारी कठिनाई की जड़ है, और यह तुम्हारे, तथा तुमसे अधिक तुम्हारे बच्चों के, हित में होगा कि तुम इस आदत को छोड़ दो। यह तुम्हारे बच्चों के हित में अधिक इसलिए है कि उन्हें अधिक काल तक जीना है और उन्हें कामचोरी की आदत से बचाना आदत पड़ने से पहले तो आसान होगा मगर बाद में मुश्किल हो जायगा।

तुम्हें इस समय कुछ पैसे की (नकद) जरूरत है। और मेरी राय है कि तुम जी-जान से किसी ऐसे व्यक्ति का काम करना शुरू कर दो जो काम का पैसा देने को तैयार हो। पिता और तुम्हारे लड़के घर-बार देखें—फसल तैयार करें और काटें, और तुम अच्छी से अच्छी मजदूरी ढूंढ कर काम करो या कर्ज हो तो काम करके उसे अदा कर दो। और तुम्हारे परिश्रम का समुचित पुरस्कार तुम्हें मिल सके इसके लिए मैं वचन देता हूँ कि आज से अगली मई की पहली तारीख तक, तुम अपने हाथ पैर से जो कमाओगे या जितने का कर्ज पारोगे, उसके हर डालर पर एक डालर मैं तुम्हें अपनी तरफ से दूंगा। इस प्रकार यदि तुमने महीने में दस डालर की मजदूरी की तो दस ही डालर तुम्हें मुझसे मिलेंगे—अर्थात् तुम्हें अपने परिश्रम का मूल्य बीस डालर मिलेगा। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि तुम सेंट लुई या सीसे की खान या कैलिफोर्निया की सोने की खान चले जाओ, मगर कोल्स काउंटी में घर के निकट जो अच्छी से अच्छी मजदूरी मिल सकती हो उस पर काम करो। अब तुम ऐसा करोगे तो ऋण से शीघ्र ही उबर जाओगे। और यही नहीं, तुम्हारी ऐसी आदत पड़ जायेगी कि फिर ऋणग्रस्त न होने पाओगे। परन्तु यदि अभी मैं तुम्हारा कर्ज चुका दूँ तो अगले साल तुम फिर इतना ही कर्ज लाद लोगे। तुम कहते हो कि ७० या ८० डालर के बदले में तुम अपना स्वर्ग जाने का अधिकार सौंप देने को तैयार हो। इसका अर्थ यह हुआ कि तुम अपने स्वर्ग सुख को बहुत सस्ता समझते हो, क्योंकि मुझे विश्वास है कि मेरे प्रस्ताव को मान कर चलने से सत्तर-अस्सी डालर तुम चार पांच महीने में कमा लोगे। तुम कहते हो कि यदि मैं रुपया दे दूँ तो तुम जमीन मेरे नाम कर दोगे, और यदि तुमने रुपया न अदा किया तो जमीन मेरे कब्जे में हो जायेगी। बकवास है। जब जमीन रहते हुए तुम्हारा गुजारा नहीं चलता तो जमीन के बिना कैसे चलेगा ? तुम मेरे प्रति सर्वदा स्नेहालु रहे हो और मैं भी तुम्हारे प्रति निर्दय नहीं हो रहा हूँ। बल्कि सच तो यह है कि मेरी सलाह मान कर चलोगे तो तुम्हें अस्सी डालर के अठगुने से अधिक का लाभ होगा।

सस्नेह तुम्हारा भाई

अ० लिंकन

२. संघर्ष-काल
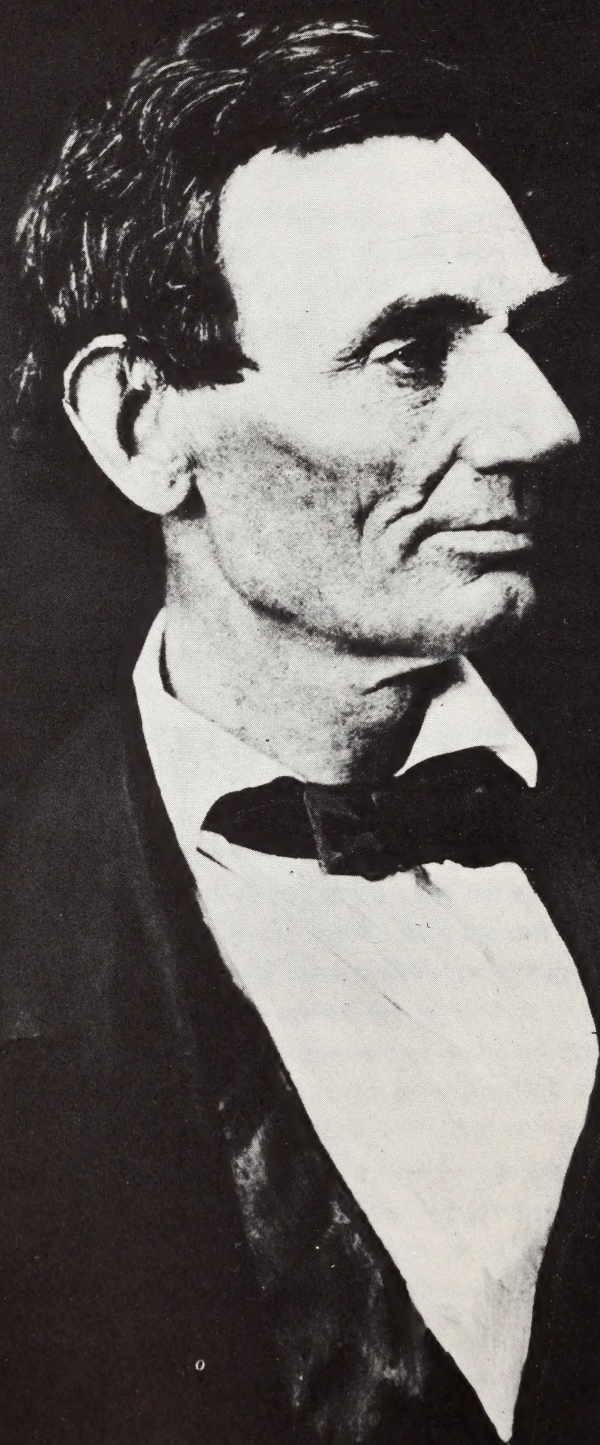
लिंकन का यह चित्र अलेग्जैंडर फेसलर ने जून १८६० में, 'महान् मुक्ति दाता' के अपने दल के द्वारा राष्ट्रपति के चुनाव के लिए मनोनीत किए जाने के एक मास बाद, तैयार किया था।

दासता पर प्रथम भाषण

सन् १८५४ तक दासता का प्रश्न अमेरिकी राजनीति पर छाने लगा था। यह प्रश्न मूलतः उन राज्यों के सन्दर्भ में उठा था जो पश्चिमोन्मुख विस्तार के उस युग में संघ में सम्मिलित हो रहे थे। इस विषय पर लिंकन ने पहला महत्वपूर्ण भाषण सेनेटर स्टीफेन डगलस नामक उस व्यक्ति के भाषण के उत्तर में दिया जो आगे चल कर लिंकन का उल्लेखनीय राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी बना। डगलस की ही भांति, लिंकन तीन घण्टे से अधिक बोले थे। उस भाषण का यहां उद्धृत खण्ड उक्त विषय पर लिंकन की मूलभूत धारणा को व्यक्त करता है।

कहा जाता है कि 'दक्षिण को समानाधिकार मिले' इसके अनुसार हमें नये प्रदेशों में भी दासता की अनुमति दे देनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि, क्योंकि आपने मेरे अपने सुअर नेब्रास्का ले जाने का विरोध नहीं किया, इसलिए मैं आपके अपने दास ले जाने पर आपत्ति न करूँ। मैं मानता हूं कि यह दलील बिल्कुल उचित होती यदि सुअर और नीग्रो में कोई अन्तर न होता। किन्तु जब आप मुझसे नीग्रो को मानव मानने से इनकार करने को कहते हैं, तो मैं पूछता हूं कि क्या आप दक्षिणवासी स्वयं ऐसा करने को कभी तैयार रहे हैं? यह विधि की अनुकम्पा है कि संसार में जन्म लेने वालों में से केवल कुछ प्रतिशत ही जन्मजात अत्याचारी होते हैं। यह अनुपात दासता-पोषक राज्यों में स्वतन्त्रता-पोषक राज्यों से अधिक नहीं है। दक्षिण में हो या उत्तर में, अधिकांश लोग मानवीय समवेदना से युक्त हैं, और उसे वे उसी प्रकार त्याग नहीं सकते, जैसे शारीरिक कष्ट की प्रतीति को नहीं त्याग सकते हैं। दक्षिणवासियों के अन्तर की ये समवेदनायें उनके इस बोध को कई प्रकार प्रकट करती है कि दासता अन्याय है और नीग्रो भी आखिर मनुष्य हैं। यदि वे इससे इनकार करें तो दो-चार साफ-साफ सवाल मैं उनसे करना चाहूँगा। सन् १८२० में आपने अफ्रीकी दास-

व्यापार को 'दस्युता' घोषित करने में और उसके लिए प्राण-दण्ड की व्यवस्था करने में लगभग सर्व-सम्मति से उत्तर का साथ दिया था। क्यों दिया था? यदि आप उसे अनाचार नहीं मानते थे, तो और किस वजह से आपने व्यवस्था की कि ऐसा करने वाले को फांसी पर चढ़ा दिया जाये? इतना ही तो हो रहा था कि अफ्रीका से जंगली नीग्रो लाकर खरीददारों के हाथ बेचे जा रहे थे। जंगली घोड़े, भैंसे या रीछ पकड़ कर बेचने वालों को फांसी देने की तो आप को नहीं सूझी!

और भी: आपके यहां 'दास-विक्रेता' नाम से ज्ञात एक देसी दुरात्मा, एक कांइया व्यक्ति पाया जाता है। वह आपकी आवश्यकताओं को ताड़ता रहता है, और जब भाव अच्छा देखता है तो आपका दास खरीदने पहुँच जाता है। अगर मजबूरी हो तो आप उससे सौदा कर लेते हैं, नहीं तो उसे दरवाजे से दुत्कार दिया करते हैं। आप उसकी सूरत नहीं देखना चाहते; उसे दोस्त तो दूर, भला आदमी तक नहीं मानते। आपके बच्चों को उसके बच्चों के साथ खेलना मना है; नीग्रो बच्चों के साथ भले ही वह खेलते कूदते रहें, मगर दास विक्रेता के बच्चों के साथ नहीं। अगर मजबूरन उससे काम आ ही पड़े तो आप चाहते हैं कि किसी तरह काम निपटे और भरसक वह आदमी छू भी न जाये। किसी से मुलाकात होने पर हाथ मिलाना आम बात है, मगर दास-विक्रेता से आप यह रस्म भी नहीं निभाते—उसके गिलगिले स्पर्श से अपने-आप हिचक जाते हैं। वह पैसा कमा ले और व्यापार छोड़ भी दे, तो भी आप की नजरों में वह वही रहता है और आप उससे तथा उसके परिवार से व्यवहार पर वही रोक लगाये रखते हैं। भला क्यों? मकई, ढोर या तम्बाकू के व्यापारी से तो आप ऐसा नहीं करते!

और भी देखिए कि संयुक्तराज्यों और कोलम्बिया जिले सहित अन्य प्रदेशों में ४,३३,६४३ स्वतन्त्र नीग्रो हैं। ५०० डालर के हिसाब से इन सब का मूल्य बीस करोड़ डालर से भी ऊपर बैठता है। क्या वजह है कि इतनी विशाल सम्पत्ति बिना स्वामियों के खुली फिर रही है? छुट्टल घोड़े या ढोर तो हमें कहीं नहीं दिखाई देते! तो बात क्या है? ये सब स्वतन्त्र नीग्रो या तो दासों के वंशज हैं या स्वयं दास रह चुके हैं, और आज भी दास होते, किंतु कोई बात थी जिसने उनके श्वेत स्वामियों को, भारी आर्थिक नुकसान उठा कर भी, उन्हें मुक्त कर देने पर बाध्य कर दिया। वह बात क्या है? क्या हम समझ नहीं सकते? वह है आप का न्याय-बोध, आपकी मानवीयता जो आपको प्रतिक्षण चेताती रहती है कि बिचारे नीग्रो का भी कुछ आत्म-स्वत्व है—और जो इसकी वंचना करते हैं तथा नीग्रो को पण्य-वस्तु बनाकर छोड़ देते हैं, वे लातों के, घृणा के और फांसी के पात्र हैं।

तो आज, हमसे आप क्यों कहते हैं कि दास को मानवाधिकार से वंचित करो और उसे जानवर से बेहतर न समझो? जो आप स्वयं नहीं करना चाहते वह हमसे करने को क्यों कहते हैं? जो काम बीस करोड़ डालर का लालच आपसे न करा सका वह हम से आप मुफ्त में करने को क्यों कहें?

परन्तु 'मिसूरी समझौते' के खण्डन के पक्ष में एक प्रबल तर्क अभी बाकी है। वह तर्क है स्वशासन के पुनीत अधिकार का तर्क। सुना है कि हमारे विशिष्ट सेनेटर महोदय को सेनेट में भी अपने विरोधियों से उस तर्क का ठीक-ठीक उत्तर नहीं मिल सका है। किसी कवि ने कहा है :

'जहां देवता पैर धरते डरते हैं वहां मूर्ख घुस जाते हैं।'

इस उद्धरण में उल्लिखित 'मूर्ख' समझे जाने का खतरा उठा कर भी मैं इस तर्क का उत्तर देता हूँ – खम ठोक कर उसका सामना करने को मैदान में उतरता हूँ।

मेरा ख्याल है कि मैं स्वशासन के अधिकार को पूर्णतः समझता हूँ और उसका मान करता हूँ। मेरे न्याय-बोध के मूल में यह विश्वास है कि जो चीज किसी व्यक्ति के एकान्त अधिकार में है उसके बारे में वह जो चाहे कर सकता है। मैं इस सिद्धान्त को व्यक्तियों पर तथा साथ ही साथ समूहों पर घटाता हूँ। ऐसा मैं इस लिए करता हूँ कि राजनीतिक दृष्टि से यह बुद्धिमानी है और स्वाभाविक दृष्टि से न्याय है। राजनीतिक दृष्टि से बुद्धिमानी यों है कि उससे हम उन झंझटों से बचे रहेंगे जो हमारे नहीं हैं। यहां, या वाशिंगटन में, मैं वर्जिनिया के ऑयस्टर कानूनों या इण्डियाना के क्रैनबरी कानूनों को लेकर परेशान नहीं हुंगा।

स्वशासन का सिद्धान्त सही है—एकान्त रूप और शाश्वत रूप से सही है। पर वह यहां लागू नहीं होता। बल्कि मुझे यह कहना चाहिये कि उसकी प्रासंगिकता इसी बात पर निर्भर है कि नीग्रो मनुष्य है या नहीं है। यदि वह मनुष्य नहीं है तब तो वह, जोकि मनुष्य है, स्वशासन के नाम पर उसके प्रति जो चाहे वह कर ही सकता है। किन्तु यदि नीग्रो मनुष्य है, तो क्या यह कहना कि वह अपना शासन आप नहीं करेगा स्वशासन के सिद्धान्त का सम्पूर्ण उन्मूलन नहीं है? जब गोरा आदमी अपना शासन करता है तो वह स्वशासन कहलाता है। परन्तु जब वह अपना शासन करता है और साथ ही दूसरों का भी शासन करता है तो वह स्वशासन से अधिक कुछ है—वह अत्याचार है। यदि नीग्रो मनुष्य है, तब तो मेरी सनातन आस्था मुझे यही सिखाती है कि 'सभी मनुष्य समान सिरजे गये हैं।' और एक व्यक्ति दूसरे को दास बनाये, इस विषय में कोई अधिकार नैतिक नहीं हो सकता।

जज डगलस अकसर कटु व्यंग्य और तिरस्कार से हमारे तर्क को इस प्रकार विकृत करते हैं : 'नेब्रास्का के गोरे अपना शासन आप करने के लायक तो हैं परन्तु मुट्ठी भर क्षुद्र नीग्रो लोगों पर शासन करने के लायक नहीं हैं!'

मुझे कोई सन्देह नहीं कि नेब्रास्का के लोग अन्य सामान्य लोगों की भांति ही समर्थ हैं और रहेंगे। मैं अन्य कुछ नहीं कह सकता पर इतना जरूर कहता हूँ कि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे पर बिना उसकी सहमति के शासन करने के योग्य नहीं है। मैं कहता हूँ कि यह

अमेरिकी जनतन्त्रवाद का मुख्य सिद्धान्त है, उसकी आधारशिला है। हमारी स्वातन्त्र्य घोषणा कहती है:

"हम इन सत्यों को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सभी मनुष्य समान सिरजे गये है; सृष्टि-कर्ता ने उन्हें कतिपय अक्षुण्ण अधिकार दिये हैं—इन अधिकारों में जीवन, स्वाधीनता और सुख प्राप्ति के प्रयत्न भी सम्मिलित हैं; इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए लोक में शासनों की स्थापना होती है जो अपनी न्यायोचित शक्ति शासितों की सहमति से प्राप्त करते हैं।"

मैंने यह उद्धरण यहां केवल यह प्रमाणित करने के लिए दिया है कि हमारी सनातन आस्था के अनुसार शासनों की न्यायोचित शक्ति शासितों की सहमति से सुलभ होती है। अब देखिये कि स्वामी और दास का सम्बन्ध इस सिद्धान्त का आद्यन्त उन्मूलन है। वह स्वामी दास पर न केवल बिना उसकी सहमति के शासन करता है, बल्कि उस पर ऐसे नियमों के अन्तर्गत शासन करता है जो कि उन नियमों से अत्यन्त भिन्न हैं जो उसने अपने लिए बना रखे हैं। सभी शासितों को शासन में समान योग देने दीजिये तो यह, और केवल यह, स्वशासन कहला सकता है।

यह न समझा जाय कि मैं गोरों और कालों के बीच राजनीतिक और सामाजिक समता स्थापित करने की दलील दे रहा हूँ। मैंने सदैव इसके विपरीत ही कहा है। मैं इस समय 'आवश्यकता' की उस युक्ति का उत्तर नहीं दे रहा जिसका आधार यह है कि काले लोग हमारे बीच रह ही रहे हैं; मैं तो उस युक्ति का खण्डन कर रहा हूँ जिसके अनुसार नीग्रो लोगों को वहां ले जाने का नैतिक समर्थन होता है जहां वे अभी तक नहीं गये हैं। एक बुराई को और विस्तार देने का मैं विरोध कर रहा हूँ—जहां वह पहले ही मौजूद है वहाँ तो हमें उसे जैसे-तैसे निभाना ही है।

दासता के सम्बन्ध में—एक मित्र को

अगस्त १८८५ में लिंकन ने अपने एक पुराने मित्र को पत्र लिखते हुए दासता के विषय में अपने व्यक्तिगत भावों की विवेचना की थी।

स्प्रिंगफील्ड, २४ अगस्त, १८५५

प्रिय स्पीड,

तुम जानते हो कि पत्र लिखने में मैं कितना कमज़ोर हूँ। तुम्हारे २२ मई के प्रीतिकर पत्र को पढ़ कर मैं तब से उसका उत्तर लिखने के लिए बराबर सोचता रहा हूँ। तुम्हारा ख्याल है कि राजनीतिक कार्यक्रम के मामले में मुझमें और तुममें मतभेद होगा। शायद होगा, परन्तु उतना नहीं जितना सोचते तुम हो। तुम जानते हो कि मैं दासता को पसन्द नहीं करता और तुम सिद्धान्ततः मानते हो कि वह अन्याय है। यहाँ तक तो मतभेद

का कोई कारण नहीं है। परन्तु तुम कहते हो कि तुम्हें संघ का विघटित हो जाना स्वीकार है लेकिन अपने दास रखने के न्यायगत अधिकार को छोड़ देना—विशेषतः उनके कहने पर जिनके उसमें स्वार्थ नहीं है, स्वीकार नहीं। मैं नहीं समझता कि कोई तुमसे वह अधिकार छोड़ देने को कह रहा हो—मैं तो निश्चित रूप से नहीं कह रहा हूँ। यह मामला मैं पूरी तरह तुम पर छोड़ता हूँ। संविधान के अन्तर्गत तुम्हें अपने दासों के सम्बन्ध में जो अधिकार है और मेरा जो कर्त्तव्य है उनको भी मैं स्वीकार करता हूँ। मैं मानता हूँ कि उन निरीह प्राणियों को दौड़ाये, पकड़े और पकड़े जाकर बेगार में जोत दिये जाते देख कर मुझे ग्लानि होती है, परन्तु मैं ओठ चबाकर चुप रह जाता हूँ। सन् १८४१ में तुमने और मैंने लुईविल से सेंट लुई तक स्टीम बोट में साथ-साथ एक कठिन यात्रा की थी। तुम्हें याद होगा, और मुझे तो है ही, कि लुईविल से ओहायो नदी के मुहाने तक नौका पर १०-१२ दास बेडियों में एक-दूसरे से बँधे हुए ले जाये गये थे। वह दृश्य मुझे निरंतर यातना देता रहा था। और जब कभी मैं ओहायो से, या दासता-पोषक और किसी स्थान से होता हुआ जाता हूँ तो वैसा ही दृश्य देखने को मिलता है। तुम्हारा यह सोचना किसी प्रकार भी उचित नहीं है कि जिस वस्तु में मुझे दुखी करने की शक्ति थी और निरन्तर है, उसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। तुम्हें तो बल्कि यह देखना चाहिये कि उत्तर की विशाल जनता संविधान और संघ के प्रति वफादार बनी रहने के हेतु किस प्रकार अपनी भावनाओं की स्वयं बलि दे रही है।

मैं दासता के प्रसार का अवश्य विरोध करता हूँ क्योंकि मेरी बुद्धि और मेरी भावना मुझे ऐसा करने को कहती है। और इसके विपरीत कुछ करूँ इसके लिए मैं कदापि बाध्य नहीं हूँ। यदि इस कारण तुममें और मुझमें मतभेद होना है तो हो.....

मैं कोई नो-नथिंग* नहीं हूँ, इतना निश्चित है। हो ही कैसे सकता हूँ? जो व्यक्ति नीग्रो लोगों के दमन का विरोध करता है, वह श्वेत लोगों के पतन के पक्ष में कैसे हो सकता है? पतन की ओर हमारी प्रगति काफी तेजी से होती जान पड़ती है। हमने, राष्ट्र के रूप में इस घोषणा से आरम्भ किया था:—"सभी मनुष्य समान सिरजे गये हैं।" अब हम उसे यों पढ़ते हैं—"सभी मनुष्य, नीग्रो लोगों को छोड़ कर, समान सिरजे गये हैं।" जब नो-नथिंग लोगों का प्रभुत्व होगा तब इसे यों पढ़ा जायगा: "सभी मनुष्य, नीग्रो लोगों को, विदेशियों को, और कैथलिकों को छोड़कर, समान सिरजे गये हैं।" जिस दिन यह हालत हो जायगी उस दिन मैं किसी ऐसे देश को—उदाहरण के लिए रूस को—चला जाना बेहतर समझूँगा जहां स्वाधीनता का ढोंग नहीं किया जाता, जहां अत्याचार शुद्ध रूप में स्वीकार किया जाता है और उसमें ढोंग की मिलावट नहीं की जाती.....

सदैव तुम्हारा मित्र,

अ० लिंकन

*** 'नो-नथिंग' एक छोटे मताग्रही राजनीतिक दल के सदस्यों को कहा जाता था। इस दल का कुछ ही समय में विघटन हो गया था।**

एक युवक को परामर्श

एक सफल वकील होने के कारण लिंकन के पास, उनके कार्यालय में आकर कानून सीखने के इच्छुक युवकों के आवेदन यदा-कदा आया करते थे। सन् १८५५ में उनमें से एक को उत्तर देते हुए लिंकन ने यह उपयोगी सलाह दी।

स्प्रिंगफील्ड, ५ नवम्बर, १८५५

श्री ईशम रीविस
प्रियवर,

मैं अभी घर पहुंचा हूँ और गत मास की २३ तारीख का आपका पत्र मुझे मिला है। मैं अधिकतर घर से इतना बाहर रहता हूँ कि किसी युवक को मेरे साथ रह कर कानून का अध्ययन करने में कुछ फायदा नहीं है। यदि आपने वकील बनने का दृढ़ निश्चय कर रखा है तो समझिये कि आधी से अधिक मंजिल तय हो गई। अब आप पढ़ने के लिए किसी के पास जायें चाहे न जायें। मैंने किसी के पास जाकर नहीं पढा। किताबें लेकर उन्हें पढ़िये और मनन कीजिये और उनकी मुख्य स्थापनायें आत्मसात् कर लीजिए, यही असल काम है। पढ़ने के लिए किसी बड़े शहर में रहने का कोई अर्थ नहीं है। मैंने पढ़ाई न्यू सलेम में की थी, जहाँ तीन सौ से अधिक की कभी आबादी ही नहीं रही। पुस्तकें और उन्हें समझने की अपनी सामर्थ्य रहती है, आप रहें चाहे जहां। श्री ड्रमर बड़े योग्य व्यक्ति और श्रेष्ठ वकील हैं (कानून के अध्ययन में मुझ से कहीं आगे) और मुझे सन्देह नहीं कि वह प्रसन्नता से आपको बता देंगे कि आप कौनसी किताबें पढ़ें, और किताबें उधार भी दे देंगे।

सदैव स्मरण रखिए कि सफल होने का आपका अपना निश्चय ही महत्वपूर्ण है, और दूसरी कोई चीज नहीं।

आपका शुभचिन्तक,
अ० लिंकन

मानव मात्र की समता पर

१८५७ में, 'ड्रेड स्काट केस' के नाम से प्रसिद्ध मामले में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने स्वल्पतम बहुमत से एक निर्णय किया जो अत्यन्त विवादास्पद सिद्ध होने के साथ ही दासता के प्रश्न की भड़कती हुई आग में ईंधन का काम कर गया।

इस निर्णय में, नीग्रो लोगों के अधिकार बहुत संकुचित कर दिये गये थे। उस वर्ष जून में लिंकन ने, एक बार फिर सेनेटर डगलस के तर्कों का उत्तर देते हुए, मानव मात्र की समता पर अपने विचारों का प्रतिपादन किया।

....जज डगलस..... रिपब्लिकनों को यह आग्रह करते पाते हैं कि स्वातन्त्र्य-घोषणा में काले-गोरे प्रभृति मानवमात्र का उल्लेख है। और वह तुरन्त स्पष्ट निराकरण करते हुए कहते हैं कि उसमें नीग्रो मनुष्य कदापि सम्मिलित नहीं हैं; और जो उन्हें सम्मिलित करना चाहते हैं वे इस लिए चाहते हैं कि वे नीग्रो लोगों के साथ, मतदान करना, खाना-पीना, सोना और विवाह करना चाहते हैं। उनका कहना है कि इसके अलावा उनके पास कोई वजह ही नहीं हो सकती। मैं इस मिथ्या तर्क का विरोध करता हूँ जिसके अनुसार अगर मैं नीग्रो औरत को दास नहीं बनाना चाहता तो इसी लिए कि उसे पत्नी बनाऊँगा! कोई जरूरी नहीं है कि मैं उसे दोनों में से कोई भी बनाना चाहूँ—मैं उसे अलग ही रख सकता हूँ। कुछ प्रकार से वह मेरी समकक्ष नहीं ही है, पर अपने इस मौलिक अधिकार में कि अपने हाथ कमायी रोटी वह बिना किसी की अनुमति के बन्धन के खा सके, वह मेरी समकक्ष है और अन्य सब की समकक्ष है।

ड्रेड स्काट मामले में मुख्य न्यायाधीश श्री टेनी स्वीकार करते हैं कि घोषणा का अर्थ इतना व्यापक हो सकता है कि उसमें सम्पूर्ण मानव परिवार आ सकता है, परन्तु वह और जज डगलस तर्क करते हैं कि उस घोषणा के रचयिता नीग्रो लोगों को शामिल करना नहीं चाहते थे क्योंकि उन्होंने वास्तव में उस समय उन्हें गोरों के समकक्ष घोषित नहीं किया। अब देखिये कि यह गूढ़ तर्क कुछ माने नहीं रखता, क्योंकि यह भी तथ्य है कि उन्होंने न तो उस समय, न बाद में कभी, सब गोरे लोगों को वस्तुतः एक दूसरे के समकक्ष घोषित किया! और यह है सर्वोच्च न्यायाधीश और सेनेटर महोदय का मुख्य तर्क, जिसके बल पर वे घोषणा-पत्र की स्पष्ट अभिधात्मक भाषा का अपमान करते हैं! मेरा विचार है कि उस विलक्षण पत्र के रचयिताओं का अभिप्राय सभी मनुष्यों से था, पर यह नहीं था कि सब मनुष्य सब प्रकार से समान हैं। उनका अभिप्राय यह नहीं था कि सब मनुष्य, रंग, रूप, बुद्धि, नैतिकता या सामाजिक योग्यता में एक दूसरे के बराबर हैं। उन्होंने यथेष्ट स्पष्टता के साथ परिभाषित कर दिया है कि उनकी दृष्टि में किस-किस प्रकार से सब मनुष्य समान सिरजे गये हैं—"कुछ अनपहरणीय अधिकार दिये हैं जिनमें जीवन, स्वाधीनता और सुख प्राप्ति के प्रयत्न सम्मिलित हैं।" यह उन्होंने कहा था और यही उनका मतलब था। उनका मतलब इस स्पष्ट असत्य को स्थापित करना नहीं था कि उस समय सभी लोग वस्तुतः उस समानता का उपभोग कर रहे हैं, न यही था कि वह समानता वे उन्हें तुरन्त प्रदान करने वाले हैं। वास्तव में उन्हें ऐसा वरदान देने की कोई सामर्थ्य नहीं थी। उनका उद्देश्य केवल अधिकार की घोषणा करना था, ताकि परिस्थितियों के अनुसार यथा-शीघ्र उसका पालन हो सके। उनका उद्देश्य

स्वतन्त्र समाज के लिए एक आदर्श स्थापित करना था जो सभी के द्वारा ज्ञापित और सभी के द्वारा समादृत हो सके, जिसकी ओर सदैव देख सकें, जिसके लिए सदैव परिश्रम कर सकें, और जो चाहे कभी पूर्णतः सिद्ध न हो सके, तथापि निरन्तर प्राप्य और इस प्रकार निरन्तर प्रसारित होते हुए अपना प्रभाव तीव्रतर बनाता रहे एवं सर्वत्र सब रंगों के लोगों को जीवन का आनन्द और जीवन का तत्त्व प्रदान करता रहे। यह दावा कि "सभी मनुष्य समान सिरजे गये हैं," ग्रेट ब्रिटेन से हमारा सम्बन्ध-विच्छेद कराने में व्यावहारिक उपयोग में नहीं आया; न वह घोषणा-पत्र में इस उद्देश्य से रखा ही गया था, वरन् भविष्य के हेतु रखा गया था। उसके रचयिता, उसे उनके रास्ते में बाधा बनाना चाहते थे जो अनन्तर एक स्वतन्त्र समाज को अत्याचार के घृण्य पथ पर ले जाने का प्रयत्न करें। और ईश्वर को धन्यवाद है कि वह ऐसा ही सिद्ध हो रहा है....

घर की फूट

दासता के प्रश्न पर जैसे-जैसे मतभेद बढ़ता गया देश में राजनीतिक दलों में परिवर्तन होते गये। परन्तु 'व्हिग' पार्टी का, जिसके कि लिंकन सदस्य थे। अस्तित्व नहीं रहा और एक नयी रिपब्लिकन पार्टी ने जन्म लिया जिसके कि लिंकन एक नेता थे। जून १८५८ में राज्य रिपब्लिकन सम्मेलन के समापन में लिंकन ने एक भाषण दिया। इसमें देश के सम्मुख प्रस्तुत प्रश्नों का इतनी स्पष्टता से, और तत्कालीन अधिकांश राजनीतिक नेताओं की तुलना में इतनी निर्भीकता से, विवेचन किया कि सारे राष्ट्र में पहली बार उनका नाम सर्वपरिचित हो गया। उनके भाषण के प्रारम्भिक अंशों ने सचमुच ही सारे राष्ट्र को झकझोर दिया।

अगर हम पहले यह समझ लें कि हम कहाँ हैं और किधर जा रहे हैं तो यह ज्यादा अच्छी तरह से तय कर सकते हैं कि क्या करना है और कैसे करना है।

दासता आंदोलन को समाप्त करने के संकल्प और विश्वास से जो नीति निर्धारित की गयी थी उसका अब पाँचवाँ साल बीतने को है।

उस नीति का अनुसरण करने से वह आन्दोलन न केवल समाप्त ही हुआ है बल्कि निरन्तर वृद्धि करता गया है।

मेरे विचार में वह उस समय तक नहीं समाप्त होगा जब तक कि एक चरम संकट आकर गुजर न जाएगा।

"जिस घर में फूट पड़ी हो वह टिक नहीं सकता।"

मेरा विश्वास है कि यह सरकार, स्थायी रूप से आधी दास और आधी स्वतन्त्र रहकर ठहर नहीं सकती।

मैं यह नहीं कहता कि संघ विघटित हो जाएगा—मैं यह नहीं कहता कि घर मिट जाएगा—पर मैं यह अवश्य कहता हूँ कि उसमें फूट नहीं रहने पायेगी।

वह समस्त एक हो जाएगा, या यह या वह।

या तो दास-प्रथा के विरोधी उसका प्रसार रोक देंगे और उसे ऐसा कर देंगे कि जनता को कालान्तर में उसके सम्पूर्ण नाश का भरोसा हो जाएगा। या उसके समर्थक उसको और बढ़ायेंगे यहां तक कि वह पुराने और नए, उत्तर और दक्षिण, सभी राज्यों में समान रूप से वैध हो जाएगी।

दासप्रथा-विषयक विचारों की व्याख्या

'घर की फूट' वाले भाषण से जहां एक ओर बिजली का सा असर हुआ वहां दूसरी ओर लिंकन पर चारों तरफ से, और खासकर पुराने प्रतिद्वन्द्वी सेनेटर डगलस की तरफ से, निन्दा की बौछार पड़ने लगी। उसी वर्ष जुलाई में शिकागो में भाषण करते हुए लिंकन को अपने विचारों की व्याख्या करने का अवसर मिला।

...प्रथमतः मैं इससे अनभिज्ञ नहीं हूँ कि यह सरकार बयासी साल से आधी दास आधी स्वतन्त्र चली आ रही है। वह मैं जानता हूँ। मुझे देश के इतिहास से काम लायक जानकारी है, और मैं जानता हूँ कि यह सरकार बयासी साल से आधी दास और आधी स्वतन्त्र चली आ रही है। मैं समझता हूँ, औद मेरे कहने का यही अभिप्राय था, मैं समझता हूँ कि उसके चले आने का कारण यह है कि तमाम वक्त, यानी नेब्रास्का विधेयक के रक्खे जाने तक, जनता को बराबर यह विश्वास बना रहा कि दासता की प्रथा अन्ततोगत्वा बिल्कुल मिट जाने वाली होने को है। इस बयासी वर्ष की अवधि में हमें जो सन्तोष रहा, उसका यही कारण था—कम से कम मैं तो यही समझता हूँ। मेरा ख्याल है कि मुझे दास-प्रथा से,

हमेशा उतनी ही घृणा रही है जितनी किसी भी उन्मूलनवादी को रही है । मैं पुरानी चाल का 'व्हिग' रहा हूँ । मैंने दास-प्रथा को हमेशा कुत्सित समझा है यद्यपि नेब्रास्का विधेयक के रखे जाने से जो नया दौर शुरू हुआ है उसके पहले तक मैं उसके बारे में चुप रहा हूँ । मुझे बराबर विश्वास रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति दास-प्रथा के विरुद्ध है और वह अन्ततः समाप्त होने जा रही है । इस राष्ट्र की विशाल जनता इसी विश्वास में जीती रही है कि दास-प्रथा अन्ततः समाप्त होने जा रही है । और उसे ऐसा विश्वास करने का कारण रहा है ।

संविधान की स्वीकृति, और उसका परवर्त्ती इतिहास जनता के इस विश्वास का कारण रहा । संविधान के रचियताओं को भी वही विश्वास था । उन पूर्वजों ने संविधान स्वीकृत करते हुए क्यों यह घोषणा की थी कि नए प्रदेश में जहां अभी दास-प्रथा नहीं है वहां भविष्य में भी वह न जाये ? क्यों घोषणा की थी कि अफ्रीकी दास-व्यापार, जिसके माध्यम से दास यहाँ आते हैं, २० वर्ष के भीतर कांग्रेस द्वारा समाप्त कर दिया जा सकता है ? क्यों ये सब कानून बने थे ? मैं ऐसे और भी कानून गिना सकता हूँ, पर इतने ही काफी हैं । यदि इनसे यह स्पष्ट निर्देश नहीं होता कि संविधान के रचयिता दास-प्रथा का अन्ततः विनाश चाहते थे, तो और क्या होता है ? और आज जब मैं यह कहता हूँ, जैसा कि मैंने उस भाषण में कहा था जिसे जज डगलस ने उद्धृत किया है, जब मैं कहता हूँ कि दास-प्रथा के विरोधी उसका और विस्तार रोकेंगे और ऐसी व्यवस्था करेंगे कि जनता को उसके अन्ततः विनाश होने का विश्वास हो जाय, तो मेरा आशय यही है कि वे उसे वही स्थान दे देंगे जो कि इस शासन के संस्थापकों ने मूलतः उसे दिया था ..

दास-प्रथा पर : एक प्रसिद्ध अधूरा लेख

लिंकन बहुधा अपने विचार कागज़ पर टांक दिया करते थे और इनमें से बहुत से अंश सुरक्षित रखे गये हैं । इनमें से जो सब से अधिक उद्धृत किया गया है सम्भवतः अगस्त १८५८ में लिखा गया था :

जैसे मैं दास होना स्वीकार नहीं कर सकता वैसे ही मैं दास-स्वामी होना भी स्वीकार नहीं कर सकता । लोकतन्त्र की मेरी यही धारणा है । इससे भिन्न जो कुछ है, वह जिस सीमा तक भिन्न है उस सीमा तक लोकतन्त्र नहीं है ।

अ० लिंकन

स्वाधीनता का तत्व

सितम्बर १८५८ में लिंकन ने एडवर्डस्विल, (इलिनाय) में एक भाषण दिया था। उस भाषण के कुछ अंश ही सुरक्षित हैं, परन्तु उनमें से एक लिंकन की वाग्मिता का प्रमाण है।

तो अब जबकि...आपने नीग्रो को मानव के दर्जे से उतार दिया है; जब आपने उसे नीचे गिरा दिया है और उसके लिए कोई चारा नहीं रहने दिया है सिवाय इसके कि वह ढोर-डंगर की तरह जिन्दगी बसर करे; जब आपने उसकी आत्मा को कुचल दिया है और जब उसे ऐसी स्थिति में रख दिया है कि जहाँ अभिशप्त आत्मा पर छायी रहने वाली अन्धियारी में आशा की किरणें लोप हो जाती हैं; क्या आप आश्वस्त हैं कि जिस प्रेत को आपने जगाया है वह पलट कर आप ही को अपना शिकार नहीं बनायेगा ? हमारी अपनी स्वाधीनता और स्वतन्त्रता की भित्ति क्या है ? किलेबन्दियाँ नहीं, हमारे हलचल-भरे समुद्र-तट नहीं, हमारे युद्धपोतों की तोपें नहीं, हमारी शूरवीर और अनुशासित सेना की प्रहार-शक्ति भी नहीं ! हमारे सुन्दर देश में फिर से अत्याचार का शासन न हो, इस आशा का आधार ये नहीं हैं। ये सभी हमारी अपनी स्वाधीनता पर आक्रमण के काम में भी लायी जा सकती हैं, और इनसे हमारी संघर्ष की शक्ति न घटती है न बढ़ती है। हमारा बल स्वाधीनता के प्रति उस अनुराग में है जो परमात्मा ने हमारे हृदय में रोपा है। हमारी रक्षा उस भावना की रक्षा में है, जो सर्वत्र सब देशों में स्वाधीनता को मानव-मात्र का दाय मानकर चलती है। उस भावना को आपने नष्ट किया नहीं कि अपने दरवाजे पर अत्याचार का बीज बो दिया। दासता की जंजीरें देखने का आदी होने का मतलब है स्वयं अपने हाथ-पैरों को उन्हें पहनने के लिए तैयार करना ! अपने भाइयों के अधिकारों को कुचलने के अभ्यस्त होने में आप अपनी निजी स्वतन्त्रता की भावना खो देते हैं और तब कोई भी चतुर अत्याचारी उदित होकर आपको अपना दास बना सकता है।

दासता-समर्थक धर्म-दर्शन

लिंकन दास-प्रथा के विषय में १८५८ में गम्भीर चिन्तन कर रहे थे, जैसा कि उनके एक और विचार-खण्ड से सिद्ध है, जो सम्भवतः उस वर्ष सितम्बर में लिखा गया था।

अगर मैं यह मान भी लूँ कि प्राकृतिक शक्तियों में नीग्रो श्वेत लोगों से घट कर हैं तो क्या यह न्याय का बिल्कुल उल्टा नहीं है कि नीग्रो लोगों से श्वेत लोग वह थोड़ी बहुत शक्ति भी छीन लें जो प्रकृति ने उन्हें दी है ? 'जो जरूरतमन्द है उसे दो,' यह दान का मसीही सिद्धान्त है। किन्तु 'जो जरूरतमन्द है उससे ले लो' यह दासता का सूत्र है।

दास-प्रथा का समर्थन करने वाले धर्म-दर्शन का सार यह मालूम होता है : 'दास-प्रथा सबके लिए उचित नहीं है, न वह सबके लिए अनुचित ही है। कुछ लोगों का दास होना ही श्रेयस्कर है; और इन लोगों के सम्बन्ध में यह ईश्वर की इच्छा है कि वे दास बने रहें।'

यह ठीक है कि ईश्वर की इच्छा का कोई विरोध नहीं कर सकता। पर फिर भी ईश्वर की इच्छा पहचानने में और विशेष मामलों में उस पर अमल करने में कुछ कठिनाई अवश्य होती है। उदाहरण के लिए मान लेते हैं कि रेवरेंड डा० रास के यहाँ एक सैम्बो नामक दास है। अब प्रश्न यह है कि ईश्वर की इच्छा क्या है ? सैम्बो दास रहे या मुक्त कर दिया जाय ? ईश्वर स्वयं इस प्रश्न का सुनाई पड़ने वाला कोई उत्तर नहीं देते। और ईश्वर की वाणी बाइबिल भी कोई उत्तर नहीं देती या जो देती भी है वह ऐसा है कि उसके अर्थ पर बहस हो सकती है। इस मामले में सैम्बो की राय जानने का ख्याल किसी को नहीं आता। इसलिए अन्त में तय होता है कि प्रश्न का निर्णय डा० रास करेंगे। और वह छांह में बैठकर, हाथों पर दस्ताने चढ़ाकर, उस रोटी से पलते हुए जो सैम्बो तपती हुई धूप में कमा रहा है, उस प्रश्न पर विचार करते हैं। यदि उन्होंने यह निर्णय किया कि ईश्वर सैम्बो को दास ही बनाये रखना चाहता है तो उनकी अपनी सुखमय स्थिति बनी रहती है। किन्तु यदि उन्होंने यह निर्णय किया कि ईश्वर सैम्बो को मुक्त कर देना चाहता है, तो उन्हें छांह से उठना पड़ेगा, दस्ताने उतार देने पड़ेंगे और अपनी रोटी कमाने के लिए खुद जुटना पड़ेगा। तो क्या डा० रास उस निर्मल निष्पक्षता से परिचालित हो सकते हैं, जो कि सत्य के निर्णय के लिए सदैव शुभ मानी गयी है ?

किन्तु कुछ लोगों के लिए दास होना ही श्रेयस्कर है !!! अच्छी चीज के नाते दासता कुछ अद्भुत जान पड़ती है—क्योंकि वह एक मात्र ऐसी अच्छी चीज है जिसे कोई व्यक्ति अपने लिए नहीं चाहता !

वाह ! भेड़िया मेमनों को खाये—इसलिए नहीं कि इससे उसके पेट को आराम मिलता है बल्कि इसलिए कि मेमनों को आराम मिलता है !!!

राष्ट्रपतित्व के विषय में : एक पत्र

यद्यपि लिंकन अमेरिकी सेनेट में डगलस की सीट के लिए सन् १८५८ में खड़े होकर चुनाव हार चुके थे, तथापि डगलस से उनके विवादों और उनके अन्य

सार्वजनिक भाषणों ने उनकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ा दी थी कि उनका नाम राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवारों में लिया जाने लगा। अपने पुराने समर्थकों में से एक को उन्होंने एक पत्र लिखा जो कि उनकी विनयशीलता का नमूना है।

स्प्रिंगफील्ड, १६ अप्रैल, १८५९

श्री टी. जे. पिकेट,

प्रिय महोदय,

आपका १३ तारीख का पत्र अभी मिला। मेरा आगे का कार्यक्रम ऐसा है कि मैं भाषण देने या कोई और काम करने के लिए बहुत जल्दी रॉक आइलैण्ड नहीं जा सकता।

और जो दूसरी बात आपने स्नेहपूर्वक लिखी है उसके बारे में मुझे साफ-साफ कहना पड़ता है कि मैं अपने को राष्ट्रपति-पद के योग्य नहीं पाता। यह जानकर कि कुछ पक्षपाती मित्रों ने उस पद के लिए मेरा स्मरण किया है, मुझे गर्व और सन्तोष अवश्य होता है, पर सच बात यह है कि मैं इसे अपने पक्ष के हित में ठीक समझता हूँ कि ऐसा कोई भी संगठित प्रयास न किया जाय जैसा कि आप चाहते हैं।

कृपया इसे गोपनीय मानें।

आपका मित्र,

अ० लिंकन

कृषि के विषय में

यद्यपि दास-प्रथा का प्रश्न उस काल का दुर्दान्त प्रश्न था, लिंकन अनेक अन्य विषयों पर भी गम्भीर चिन्तन किया करते थे। धरती के पुत्र और सीमान्त के विकास के समर्थक होने के कारण उन्हें खेती की उन्नति में विशेष रुचि थी। (कुछ वर्ष बाद उन्हीं के राष्ट्रपतित्व में पहली बार सरकारी कृषि विभाग की स्थापना हुई जिसने कालान्तर में अमेरिकी कृषि मन्त्रालय का रूप पाया।) सितम्बर १८५९

में लिंकन ने मैडिसन, (विस्कांसिन) में, विस्कांसिन राज्य कृषि सभा का वार्षिक भाषण दिया। उनके भाषण के यहाँ उद्धृत अंशों से यह प्रकट होता है कि कृषि विद्या में नियमित पाठशालाएँ आरम्भ होने के वर्षों पहले उन्होंने कृषि-शिक्षा की सम्भावनाओं को देख लिया था।

... खेती को छोड़कर ऐसा कोई काम नहीं है, जो मनुष्य की मेहनत और अकल दोनों की मदद से, पैसा और सन्तोष दोनों चीजें प्राप्त करने का उतना अधिक अवसर दे सके। मेरी निगाह में इससे ज्यादा खुशी किसी और बात से नहीं हो सकती कि कोई ऐसी चीज खोज निकाली जाय जो नयी भी हो और कीमती भी हो—और ऐसी ही चीज की खोज रहे तो मेहनत में मजा आता है। और देखिए कि खेती में इस तरह की खोज के कितने ज्यादा और कितने विविध मौके हैं! पाठशाला में या स्कूल में जो आदमी पढ़ चुका है उसको तो खेती में जरूर ही बे-हिसाब फायदा और मजा मिलेगा। घास का एक-एक तिनका समझने की चीज है, और जहां एक पैदा होता है वहां दो पैदा करना फायदा भी है और मजा भी है। और सिर्फ घास ही नहीं, बल्कि मिट्टी, बीज और मौसम; बाढ़ें, नालियाँ और मेढ़ें; सिंचाई, निकासी और अनावृष्टि; जुताई, गुड़ाई और पटाई; कटाई, कढ़ाई और ओसाई, फसलों का बचाव, फसलों के कीड़े, फसलों की बीमारियाँ और उनके इलाज और बचाव के तरीके; औजार और मशीनें, उनकी अच्छाइयाँ, बुराइयाँ और उनके सुधारने के तरीके; सुअर, घोड़े और गाय-भैंस; भेड़ें, बकरियाँ और मुर्गियाँ; पेड़, झाड़ियाँ, फल और फूल; इस तरह की हजार चीजें हैं जिनको कि समझने बैठो तो हरेक की अपनी एक दुनिया दिखाई देती है।

इन सब में किताबों की मदद ली जा सकती है। किसी में पढ़ने का शौक और योग्यता हो तो उसे मालूम हो सकता है कि औरों ने क्या खोज रखा है। जो सवाल हल किए जा चुके हैं उनको समझने की यह एक कुञ्जी है। और इतना ही नहीं, जो सवाल हल नहीं हो सके हैं यह उनको भी हल करने का शौक पैदा करती है और उसमें मदद भी देती है। विज्ञान के मौलिक नियम हम जानते ही हैं और उनसे बहुत काम ले सकते हैं। वनस्पति-विज्ञान का थोड़ा ज्ञान हो तो वनस्पति के सम्बन्ध में—फसलों के मामले में मदद मिल सकती है; रसायन-शास्त्र की जानकारी हो तो मिट्टी के विश्लेषण में, खादों की तैयारी और इस्तेमाल में, और अनगिनत और मामलों में मदद मिल सकती है। यन्त्र-सम्बन्धी विज्ञान तो हर क्षेत्र में बहुत काम आता है मगर औजारों और मशीनों के मामले में खास तौर से काम आयेगा।

यह भी समझ में आता है कि शिक्षा—अनुशासित चिन्तन—को खेती के साथ या किसी और तरह की मेहनत के साथ पक्के काम के आधार पर ही जोड़ा जा सकता है। यानी लापरवाही से, बेमन से किया हुआ काम, या अधूरे काम में इस तरह के जोड़ की गुंजाइश बिल्कुल नहीं रहती। और यह भी बात है कि पक्का काम किया जाय तो थोड़ी-सी जमीन भी काफी साबित हो जाती है। इसके अलावा एक बात यह भी है कि अगर दुनिया को आगे चलकर लड़ाई की तरफ से हटकर शान्ति की तरफ ज्यादा ध्यान देना है तो उसमें ऐसा ही होना जरूरी है। आबादी तेजी से बढ़ेगी, पहले से ज्यादा तेजी से; और वह वक्त दूर नहीं जब सब कलाओं में मूल्यवान कला कम से कम जमीन से निर्वाह कर सकने की कला मानी जायेगी। जिस समाज का एक-एक आदमी यह कला सीखे हुए है, वह किसी भी तरह के दमन का शिकार कभी नहीं हो सकता। ऐसा समाज राजाओं, महाजनों और जमींदारों सबसे मुक्त रहकर चलेगा....

एक आत्म-कथा

जब राष्ट्रपति-पद के भावी उम्मीदवार के रूप में लिंकन जनता में प्रसिद्ध होने लगे तो उनकी जीवनी के तथ्य जानना चाहने वालों की फरमाइशें उनके पास आने लगीं। अपने एक मित्र के अनुरोध पर उन्होंने अपने जीवन का सारांश बड़ी खूबी से बहुत कम शब्दों में लिखा।

मैं कैंटकी की हार्डिन काउण्टी में १२ फरवरी १८०९ को पैदा हुआ था। मेरे माता और पिता दोनों वर्जिनिया में साधारण परिवारों में उत्पन्न हुए थे। मेरी मां जो कि मेरे दसवें वर्ष में गुजर गयी, हैंक्स नामक परिवार की थीं जिसके कुछ व्यक्ति इस समय एडम्स में और कुछ मेकन काउण्टी (इलिनाय) में रहते हैं। मेरे बाबा अब्राहम लिंकन वर्जिनिया की राकिंघम काउण्टी से १७८१ या '८२ में कैंटकी चले आये थे और वहाँ साल या दो साल बाद इन्डियनों के हाथों, लड़ाई में नहीं धोखे से जंगल में खेत बनाते हुए मारे गए थे। उनके पूर्वज, जो कि क्वेकर थे, पैंसिलवेनिया के बर्कस जिले से वर्जिनिया गये थे। उन्हीं की

नामराशि एक परिवार न्यू इंगलैंड में था, परन्तु उन दोनों में खोज करने पर नामों के अतिरिक्त और कोई समानता नहीं मिली; एनोक, लेवी, मोर्डेकाइ, सालोमन, अब्राहम और इसी प्रकार के नाम दोनों में मिले।

अपने पिता की मृत्यु के समय मेरे पिता केवल छः वर्ष के थे और उनका बचपन बगैर किसी तरह की शिक्षा के बीता। जब मैं ८ साल का था तो वह कैंटकी से वहाँ चले आए जो अब स्पैन्सर काउण्टी (इंडियाना) कहा जाता है। जब हम लोग अपने नये घर में आये तो इंडियाना राज्य संघ में शामिल ही हुआ था। वह प्रदेश जंगली था, उसमें भालू और अन्य जंगली जानवर भरे पड़े थे। वहीं मैं बड़ा हुआ। स्कूल के नाम पर कुछ पाठशालाएं थीं अवश्य, परन्तु वहाँ का कोई अध्यापक पढ़ने, लिखने, और जोड़-बाकी करने से अधिक न जानता था। अगर पास-पड़ौस में कोई ऐसा आदमी हुआ जिसके बारे में यह ख्याल हो कि वह लैटिन जानता है तो उसे चमत्कारी पुरुष समझा जाता था। वहाँ शिक्षा प्राप्त करने की कोई प्रेरणा रत्ती भर नहीं थी। स्पष्ट है कि जब मैं बड़ा हुआ तो मैं कुछ बहुत शिक्षित न था। तो भी जैसे भी रहा हो मुझे पढ़ना, लिखना और जोड़-बाकी करना आता था। तब से आज तक मैं स्कूल में नहीं पढ़ा। अपनी उस समय की विद्या में मैंने जो कुछ थोड़ी-बहुत वृद्धि की है वह समय-समय पर आवश्यकता से बाध्य होकर सीख-सीख कर की है।

मुझे खेती का काम सिखाया गया था और वह मैं २२ वर्ष की उम्र तक करता रहा। २१ वर्ष की उम्र में मैं इलिनाय आया और मेकन काउण्टी में एक वर्ष रहा। उसके बाद मैं न्यूसलेम चला गया (जो कि उस वक्त सैंगामन में था और अब मेनार्ड काउण्टी में है)। वहाँ मैं एक दुकान में एक तरह के क्लर्क की हैसीयत से साल भर रहा। इस वक्त 'ब्लैकहाक' युद्ध छिड़ गया और मैं स्वयं-सेवी दल का नायक चुना गया—सफलता की इससे अधिक प्रसन्नता मुझे आज तक नहीं हुई। युद्ध से लौटने पर मेरी पद-वृद्धि हुई, उस वर्ष (१८३२) में विधान-सभा के चुनाव में खड़ा हुआ और हारा—जनता के हाथों मेरी एकमात्र हार थी। इसके बाद के चुनाव में, और अनन्तर तीन द्वि-वार्षिक चुनावों में, बराबर सफलता होती रही। उसके बाद मैं खड़ा नहीं हुआ। विधान-सभा की सदस्यता के इस दौर में मैंने कानून का अध्ययन किया और वकालत करने स्प्रिंगफील्ड चला गया। सन् १८४६ में मैं एक बार कांग्रेस की प्रतिनिधि-सभा का सदस्य चुना गया। दुबारा चुनाव में नहीं खड़ा हुआ। १८४९ से '५४ तक जम करके वकालत की। राजनीति में हमेशा 'ह्विग' रहते हुए और आम तौर से चुनावों में 'ह्विग' पार्टी की ओर से खड़े होते हुए, जनता को जब-तब सम्बोधन करते हुए—राजनीति में मेरी दिलचस्पी घट चली थी कि मिसूरी-समझौते का खण्डन होने के कारण मैं फिर सजग हो गया। अनन्तर मैंने जो कुछ किया है वह आपके सामने है।

यदि मेरे रूप-रंग का भी ब्यौरा जरूरी हो तो कहा जा सकता है कि मैं ६ फुट और लगभग ४ इञ्च लम्बा हूँ, इकहरे बदन का हूँ, मेरा औसत वजन १८० पौंड है।

रंग गहरा है, बाल मोटे और काले हैं, आंखें भूरी हैं। और कोई शिनाख्त का निशान याद नहीं आता।

शासन का दर्शन

लिंकन ने शासन-दर्शन के विषय में, विशेषतया अमेरिकी परिस्थिति के सन्दर्भ में, बहुत चिन्तन किया था। इस अंश में, जो सम्भवतः १८६० में लिखा गया था, उन्होंने अपने कुछ विचार व्यक्त किये हैं।

यह सब कोई आकस्मिक घटना नहीं है। इसका एक कारण रहा। संविधान के और संघ के बिना हम सफल नहीं हो सकते थे; परन्तु ये ही हमारी समृद्धि के मूल कारण नहीं हैं। इनके भी पीछे कुछ है जो कि मानव-हृदय से घनिष्ठतर रूप से सम्बद्ध है। वह कुछ, 'सभी की स्वाधीनता' का सिद्धान्त है—वह सिद्धान्त जो सबके लिए मार्ग प्रशस्त करता है, सबको आशा देता है—और परिणामतः आविष्कार और उद्योग की प्रेरणा देता है।

उस सिद्धान्त का हमारे स्वातन्त्र्य के घोषणा-पत्र में अभिव्यक्त होना शुभ और सुन्दर रहा। इसे लेकर और इसके बिना भी हम ग्रेट ब्रिटेन से अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर सकते थे, परन्तु उसके बिना मेरे विचार से हम अपनी स्वाधीन सरकार नहीं बना सकते थे और अनन्तर समृद्ध नहीं हो सकते थे। कोई पराधीन जाति केवल नए मालिक की आशा से इस प्रकार संघर्ष और इतना सहन नहीं कर सकती जितना हमारे पूर्वजों ने किया; वह किसी और ऊँची चीज का आश्वासन चाहती है।

इस सिद्धान्त पर उस समय बल देना वह 'उचित शब्द' था जो हमारे लिए मानो सोने का फल सिद्ध हुआ। संघ और संविधान मानो चांदी का चित्र था जो उस फल के आस-पास रच दिया गया। यह चित्र फल को छिपाने या नष्ट करने के लिए नहीं बल्कि उसे अलंकृत और सुरक्षित करने के लिए बनाया गया। फल चित्र के लिए नहीं बल्कि चित्र फल के लिए बनाया गया।

इस लिए हम ऐसे कर्म करें कि न तो फल, न ही चित्र कभी धुँधला हो या नष्ट हो जाये।

हम ऐसा कर्म कर सकें, इसके लिए हमें उन बातों को सोचना और समझना है जिनसे खतरा हो सकता है।

कूपर संस्थान का भाषण

यद्यपि लिंकन का नाम इतिहास में 'महान मुक्तिदाता' के रूप में चला आता है—जिसने कि दासों को मुक्त किया और अमेरिका से दासता जैसी कुप्रथा को उखाड़ फेंका—उन्होंने गृह-युद्ध के पूर्ववर्ती दिनों में अपना लक्ष्य सरकारी आदेश द्वारा दास-प्रथा तुरन्त समाप्त करना नहीं बल्कि सामाजिक चेतना के द्वारा दास-प्रथा को क्रमशः विनष्ट करना बनाया था। आशा थी कि दासता-समर्थक राज्य इस कार्यनीति को मान लेंगे, भले ही बेमन से मानें, और संघ की रक्षा हो सकेगी। तथापि, दास-प्रथा के नैतिक पक्ष पर उन्होंने जो कहा वह सारे देश में गूंजा और सुनाई पड़ा। विशेष रूप से उनके एक भाषण ने दूर-दूर तक लोगों को जागृत किया—यह भाषण कूपर संस्थान में रिपब्लिकनों की एक सभा में दिया गया था। इसका अन्तिम अंश इस प्रकार है :

यदि दास-प्रथा उचित है तो उसके विरोधी सभी शब्द, कानून, नियम और संविधान स्वतः गलत हैं और उन्हें मिटाकर बहा देना चाहिए। यदि दास-प्रथा उचित है तो सच्चाई की बात यह है कि हम उसकी देश-व्यापकता या विश्व व्यापकता का विरोध नहीं कर सकते। यदि यह अनुचित है तो सच्चाई की बात यह है कि दूसरे लोग उसके विस्तार पर और उसके विकास पर जोर नहीं दे सकते। वे जो कुछ माँगते हैं वह हम तुरन्त दे सकते, यदि हम मानते कि दास-प्रथा उचित है; जो कुछ हम माँगते हैं वे भी उसे उतनी ही शीघ्र दे सकते यदि वे यह समझते कि दास-प्रथा अनुचित है। उनका उसे उचित मानना और हमारा उसे अनुचित मानना ही वह समस्या है जिस पर सारा विवाद खड़ा हुआ है। वे उसे उचित मानते हैं इसलिए उसकी पूर्ण स्वीकृति चाहने का दोष उन पर नहीं लगाया जा सकता; लेकिन हम उसे अनुचित मानते हैं इसलिए क्या हम उनके आगे झुक सकते हैं ? क्या हम उनके मत से सहमत हो सकते हैं और अपने मत के विरुद्ध जा सकते हैं ? अपनी नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक जिम्मेदारियों को देखते हुए क्या हम ऐसा कोई काम कर सकते हैं ?

दास-प्रथा को अनुचित मानते हुए भी हम उसे जहाँ वह है वहाँ बने रहने दे सकते, हैं, क्योंकि देश में उसकी मौजूदगी हमें इसके लिए बाध्य करती है। परन्तु क्या हम यह जानते हुए

कि उसके विरुद्ध मत देने से वह रुक सकती है, उसे राष्ट्रीय प्रदेशों में फैलने, और यहाँ स्वाधीन राज्यों में आकर हमें ग्रस लेने दे सकते हैं ? यदि हमारी कर्त्तव्य-भावना हमें ऐसा करने से रोकती है तो आइए, हम निर्भय होकर सार्थक रूप से उस कर्तव्य-भावना का पालन करें। हम उस हेतुवाद के फेर में न पड़ें जो कि इतने परिश्रम से हमारे ऊपर लादा जा रहा है— जैसे कि यह युक्ति कि हमें उचित और अनुचित के बीच कोई मार्ग निकालना चाहिए। यह प्रयत्न ऐसा आदमी ढूँढने के बराबर होगा जो न मृत हो न जीवित हो ! या यह युक्ति कि —'हमसे क्या मतलब ?' जब कि इस प्रश्न से सभी ईमानदार आदमियों को मतलब है। या कि संघ की एकता के नाम पर संघ के ईमानदार समर्थकों को संघ-विरोधियों के सम्मुख झुकने को कहना, यानी ईश्वरीय नियम को उलट कर पापी को नहीं बल्कि धर्मात्मा को पश्चाताप करने को कहना जैसे—कि वाशिंगटन के नाम की दुहाई जिसमें लोगों से वाशिंगटन के कहे का उल्टा कहने को और वाशिंगटन के किये का उल्टा करने को कहा जाता है।

और न हम झूठे अभियोगों के डर से अपने पथ से विचलित हों, न इस भय से भीत हों कि सरकार को क्षति पहुँचेगी या हमें कारागार में जाना पड़ेगा; हमें आस्था रहे कि सत्य में ही शक्ति है और इस आस्था से हम जो अपना कर्त्तव्य समझते हैं उसे करने का अन्त तक साहस रखें।

३. राष्ट्रपतित्व-काल

यह अब्राहम लिंकन के मन्त्रिमण्डल की उस बैठक का कल्पित चित्र है जो वाशिंगटन के व्हाइटहाउस में उस घोषणा का मसविदा सुनने के लिए बुलाई गई जो थी मनन्तर 'दास-मुक्ति की घोषणा' के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

नामज़दगी की स्वीकृति

मई १८६० में शिकागो (इलिनाय) में राष्ट्रीय रिपब्लिकन सम्मेलन ने राष्ट्रपति पद के लिए लिंकन को नामजद किया। अविकार-भाव से उन्होंने नामज़द होना स्वीकार कर लिया।

स्प्रिंगफील्ड, (इलिनाय) २३ मई, १८६०

माननीय श्री जार्ज ऐशमन,
राष्ट्रीय रिपब्लिकन सम्मेलन के सभापति

महोदय,

सम्मेलन ने आपके सभापतित्व में मेरी जो नामजदगी की है और जिसकी विधिवत् सूचना मुझे सम्मेलन की एतदर्थ नियुक्त समिति के रूप में आपने एवं अन्य सज्जनों ने अपने हस्ताक्षर से दी है, उसे मैं स्वीकार करता हूँ।

आपके पत्र से संलग्न, सिद्धान्तों एवं आदर्शों की घोषणा से मैं सहमत हूँ, और मेरा कर्तव्य होगा कि मैं उसकी किसी रूप में भी अवज्ञा न करूँ।

सम्मेलन में प्रतिनिधित्व पाये हुए सब लोगों के विचारों और मनोभावों का; सब राज्यों, प्रदेशों और जातियों के अधिकारों का; संविधान की अखंडता का और सब की अमर एकता, मित्रता और समृद्धि का स्मरण करते हुए मैं परमात्मा से शक्ति मांगता हूँ और सम्मेलन के घोषित सिद्धान्तों के व्यवहार में योग देने का अवसर पाकर कृतार्थ होता हूँ।

आपका अनुगृहीत मित्र और सहनागरिक,
अ० लिंकन

विदा-भाषण : स्प्रिंगफील्ड

फरवरी १८६१ में लिंकन स्प्रिंगफील्ड (इलिनाय) का घर छोड़कर वाशिंगटन में राष्ट्रपतित्व का कार्यभार संभालने चले गये। सहनागरिकों से विदा लेते समय उन्होंने जो शब्द कहे थे उनकी मार्मिकता यह सोच कर और बढ़ जाती है कि भविष्य में क्या होने वाला था—गृहयुद्ध और हत्या !

मेरे मित्रो,

आपसे विदा लेते हुए मुझे जो दुःख हो रहा है वह मेरा हृदय ही जानता है। मैं जो कुछ हूँ, इस स्थान की और इस स्थान के निवासियों की बदौलत हूँ। यहाँ मैंने एक चौथाई सदी गुजारी है और जवानी से बुढ़ापे में आया हूँ। मेरे बच्चे यहीं पैदा हुए और एक यहीं की मिट्टी में दफन है। मैं जाता हूँ, और नहीं जानता कि कब या क्योंकर लौटूँगा। मुझ पर बड़ी जिम्मेदारी है इतनी जितनी कि वाशिंगटन पर भी नहीं थी। जिस ईश्वरीय सत्ता ने उसकी मदद की थी, उसकी मदद के बिना मैं सफल नहीं हो सकता। उसकी मदद हो तो मैं निष्फल न होऊँगा। वह जो सर्वत्र है, जो मेरे संग जा रहा है और आपके संग यहाँ रह रहा है, उसमें आस्था रखकर हम आश्वस्त हों कि जो कुछ होगा भला होगा। उसकी शरण में आपको दे कर, जैसे कि, मुझे आशा है आप मुझे दे रहे हैं, मैं स्नेहार्द्र मन से आपसे विदा लेता हूँ।

स्वतन्त्रता-भवन का भाषण

लिंकन के चुनाव से कुपित और आतंकित होकर दासता-पोषक राज्य, उनके स्प्रिंगफील्ड से जाने के पहले ही, संघ से विच्छिन्न होने की घोषणा करने लगे थे। इस चिन्ताजनक परिस्थिति के प्रति, लिंकन ने अपने विचार वाशिंगटन जाते हुए फिलेडेल्फिया के उसी स्वातन्त्रता-भवन में प्रकट किये जिसमें अनेक वर्ष पूर्व स्वातन्त्र्य घोषणा पर हस्ताक्षर किये गये थे।

यह जानकर कि मैं यहाँ उस स्थल पर खड़ा हूँ जहाँ एक समय हमारी वर्तमान जीवन-पद्धति को जन्म देने वाली देशभक्ति, बुद्धि और सिद्धान्त निष्ठा के नेताओं का समन्वय हुआ था, मेरा हृदय भर आता है। आपने स्नेहवश मुझे यह आदेश दिया है कि देश की वर्तमान अस्थिरता में स्थिरता लाना मेरा काम है। उत्तर में मैं यही कह सकता हूँ कि जो भी मेरी राजनीतिक भावनाएँ हैं, वे, जहाँ तक मुझ से बन पड़ा है, मैंने उन्हीं भावनाओं से ली हैं जो इस भवन में उपजीं और यहीं से संसार में प्रसारित हुई थीं। मेरा कोई भी राजनीतिक विचार ऐसा नहीं है जिसका आधार स्वातन्त्र्य घोषणा में निहित विचारों में न रहा हो। मैंने अक्सर उन खतरों के बारे में सोचा है जो यहाँ एकत्र होकर स्वातन्त्र्य के घोषणा-पत्र को रचने और स्वीकार करने वालों ने उठाये थे। मैंने अक्सर उन कष्टों के बारे में सोचा है जो वह स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाली सेना के अधिकारियों और सैनिकों ने झेले थे। मैंने अक्सर अपने से पूछा है कि वह कौन-सा महान् सिद्धान्त या विचार है जिसने इस संघ को इतने काल से संगठित रखा है। मातृदेश से उपनिवेशों के अलग हो जाने की इच्छा ही वह चीज नहीं थी, वह थी स्वातन्त्र्य-घोषणा में अभिव्यक्त वह भावना, जिसने इस देश को ही नहीं, शायद चिर-काल के लिए समस्त विश्व को स्वाधीनता दी। वही वह चीज है जिसने आश्वासन दिया था कि समय आने पर मानव-मात्र के कन्धे से जुआ उतर जायेगा। यही आशा स्वातन्त्र्य-घोषणा में सन्निहित है। अब, मेरे मित्रो, प्रश्न यह है कि क्या इस देश को इसी भावना के आधार पर कायम रखा जा सकता है? यदि हाँ तो, उसे बनाये रखने में योग देकर मैं अपने को संसार के सुखी से सुखी मनुष्यों में गिनूँगा। यदि नहीं, तो वास्तव में अनर्थ हो जायेगा। बल्कि मैं कहता हूँ कि यदि इस देश की रक्षा के लिए उस सिद्धान्त को त्यागना अनिवार्य हो तो मैं यहीं इसी जगह मारा जाना पसन्द करूँगा पर उसे त्यागूँगा नहीं। मेरी दृष्टि में वर्तमान परिस्थिति के अन्तर्गत, रक्तपात अथवा युद्ध की आवश्यकता नहीं है। उसका कोई प्रयोजन नहीं है। मैं इस मार्ग के पक्ष में नहीं हूँ और अभी कह सकता हूँ कि रक्त-पात नहीं होगा, जब तक कि सरकार को इतना मजबूर न कर दिया जाये कि उसको आत्म-रक्षा के लिए प्रस्तुत होना पड़े।

मित्रो, यह भाषण मेरे लिए बिल्कुल अप्रत्याशित था। जब मैं यहाँ आया तो नहीं जानता था कि मुझ से बोलने को भी कहा जायेगा। मैं समझा था कि केवल झण्डा फहराने के सिलसिले में आया हूँ। इसलिए हो सकता है कि कुछ अनुचित कह गया होऊँ। किन्तु जो कुछ मैंने कहा है उसी के लिए मैं जीता हूँ, और ईश्वर की ऐसी ही इच्छा हुई तो उसी के लिए मरूँगा।

प्रथम सभारम्भ भाषण

४ मार्च, १८६१ को लिंकन ने जो पहला सभारम्भ भाषण किया उसमें उन्होंने धैर्यपूर्वक सदाग्रह किया कि दक्षिणी राज्य संघ में ही रहें; और उनसे अनुरोध किया कि गृह-युद्ध न होने दें।

...प्रमुख कार्यपाल के समस्त अधिकार का मूल जनता है, और उसने उसे राज्यों के सम्बन्ध-विच्छेद के नियम स्थिर करने का कोई अधिकार नहीं दिया है। जनता चाहे तो यह भी कर सकती है, परन्तु कार्यपाल की अपनी ओर से उसमें कोई गति नहीं है। उसका कर्तव्य यह है कि जिस रूप में वर्तमान शासन उसे सौंपा गया है उसमें उसका प्रबन्ध करे और उसे अक्षुण्ण रखते हुए अपने उत्तराधिकारी को सौंप जाये।

हमें यह विश्वास क्यों न रहे कि अन्ततः जनता न्याय का ही अनुसरण करेगी? क्या संसार में इससे श्रेष्ठतर या इसके समान ही कोई और विश्वास हो सकता है? क्या आज के मतभेदों में, दोनों में से कोई पक्ष ऐसा है जिसे अपने पक्ष की सत्यता में आस्था न हो? यदि चिर-सत्य और न्याय का कर्त्ता, राष्ट्रों का परमपिता, दक्षिण वालों के पक्ष में हो तो, और उत्तर वालों के पक्ष में हो तो, यह सत्य और वह न्याय, इस विराट विचार-सभा, अमरीकी जनता, के निर्णय से निश्चय ही स्थापित होगा।

जिस शासन के हम अन्तर्गत हैं उसके नियमों के अनुसार इस जनता ने अपने सार्वजनिक अधिकारियों को अनाचार की बहुत कम सुविधा दी है; और होशियारी से यह व्यवस्था भी की है कि वह न्यून सुविधा भी जल्दी ही फिर उनसे ले ली जाया करे।

जब तक जनता सच्चरित्र और सतर्क है तब तक कोई प्रशासन कितनी ही दुष्टता या मूर्खता क्यों न करे, चार साल के स्वल्प अवकाश में शासन का कोई मार्मिक अहित नहीं कर सकता।

देशवासियो, आइये हम सब मिल कर इस विषय पर शान्ति और गम्भीरता से सोचें। धैर्य से आपका कुछ खोया नहीं जाता। यदि आपको हड़बड़ा कर आपसे जल्दी में कोई ऐसा निर्णय कराना नियति में हो जो आप सोच-समझकर कभी न करते, तो आपके धैर्य से इसकी आशंका दूर हो जायेगी; पर किसी अच्छे उद्देश्य में धैर्य से कोई बाधा नहीं होती। आपमें से जो अभी असन्तुष्ट हैं, उनको यह सन्तोष हो कि आपका पुराना संविधान ज्यों का त्यों है, और विवादास्पद प्रश्न पर आप ही के रचे हुए तत्सम्बन्धी नियम अभी अक्षुण्ण हैं; और नया प्रशासन चाहे भी तो उनमें कोई हेर-फेर करने का उसे तत्काल कोई अधिकार नहीं है। यदि यह मान ही लिया जाये कि जो असन्तुष्ट हैं, विवाद में उनका ही पक्ष सत्य है, तो भी एकाएक कुछ कर बैठने का क्या तर्क है? सजगता, देशभक्ति, ईसाइयत, और उस प्रभु में

आस्था जिसने इस स्वर्ण-भूमि को कभी नहीं भुलाया है, आज भी हमारी सब वर्तमान कठिनाइयों को अच्छी तरह सुलझा देने में समर्थ होंगी।

मेरे असन्तुष्ट भाइयो, गृहयुद्ध के महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय मेरे नहीं, आपके हाथों में है। प्रशासन आप पर आक्रमण नहीं करेगा। जब तक आप पहल नहीं करें आप संघर्ष में पड़ ही नहीं सकते। आप प्रशासन को नष्ट कर देने के लिए ईश्वर से प्रतिज्ञाबद्ध नहीं हैं; परन्तु मैं तन-मन से उसकी चौकसी करने, उसे बचाने और सुरक्षित रखने के लिए शपथ-बद्ध हूँगा।

समाप्त करने को जी नहीं होता। हम लोग शत्रु नहीं, मित्र हैं। हमें शत्रु नहीं ही बनना है। क्रोध ने हमारे स्नेह-सूत्र को ढीला भले ही कर दिया हो, उसे खोल वह नहीं सकता। इस विशाल देश की धरती पर प्रत्येक रणस्थल और प्रत्येक योद्धा की समाधि से लेकर प्रत्येक जीवित हृदय और प्रत्येक घर के आँगन तक स्मृतियों के जो रहस्यमय तार खिंचे हुए हैं वे आज भी छुए जाने पर संघ के ही समवेत स्वर झंकृत करेंगे—और यह निश्चय है कि हमारे सद्विवेक की देवी के हाथों वे छुए जायंगे।

युद्ध : संसद को सन्देश

अप्रैल १८६१ में समटर दुर्ग में स्थित एक संघीय सैन्य दल पर संघ से अलग होने वाले राज्यों के सैनिकों ने हमला कर दिया, और युद्ध अनिवार्य हो गया। ४ जुलाई १८६१ को संसद के प्रति संदेश में लिंकन ने परिस्थिति की धीर-गंभीर शब्दों में विवेचना की।

.. समटर दुर्ग की घटना का कारण देकर प्रशासन पर आक्रमण करने वालों ने .. देश को स्पष्ट निर्णय करने पर मजबूर कर दिया है कि 'वह सम्पूर्ण विघटन अथवा रक्तपात' में से किसे स्वीकार करेगा।

और इस प्रश्न के उत्तर पर संयुक्त राज्यों का भविष्य ही नहीं, और भी बहुत कुछ निर्भर है। यह प्रश्न समस्त मानव-परिवार के सम्मुख यह समस्या रखता है कि एक सांविधानिक जनतन्त्र, या लोकतन्त्र-जनता का अपने हाथों अपने लिए बनाया हुआ प्रशासन—अपने घरेलू शत्रुओं के मुकाबले में अपने प्रदेश को अखण्ड रख सकता है या नहीं। सवाल पैदा होता है कि क्या कुछ असन्तुष्ट व्यक्ति, जो संख्या में इतने कम हैं कि न्यायानुसार किसी भी दशा में शासन नहीं संभाल सकते, प्रस्तुत मामले में बनाये हुए बहानों से, या किन्हीं और बहानों से, या बिना किसी बहाने के मनमानी से अपने प्रशासन को भंग कर दे सकते हैं और

इस प्रकार संसार में स्वतन्त्र प्रशासन का विनाश ही कर दे सकते हैं ? हमें मजबूर होकर अपने से यह सवाल पूछना पड़ता है कि क्या सभी जनतन्त्रों में यह सैद्धान्तिक दौर्बल्य निहित होता है ? क्या प्रशासन को यह आवश्यक है कि वह इतना शक्तिमान हो कि उसके अपने जन इच्छानुसार कुछ न कर सकें, या कि इतना दुर्बल हो कि अपना अस्तित्व भी न बनाये रख सके ?

यह सब देखते हुए प्रशासन को युद्ध-शक्ति का आवाहन करने के अतिरिक्त और उस के अपने विनाश में लगी हुई ताकत का उसकी रक्षा में संलग्न शक्ति से विरोध करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया है...

हमारे जन-प्रशासन को बहुधा एक प्रयोग कहा जाता है। हम लोगों ने इसके दो ध्येय पूरे कर लिये हैं—उसकी सफल स्थापना और उसका सफल प्रबन्ध। एक अभी बाकी रहता है —घरेलू शत्रुओं द्वारा उसे उखाड़ फेंकने के प्रयत्न से उसकी सफल रक्षा। अब यह हमारा दायित्व है कि हम संसार को दिखा दें कि जो लोग सुचारु रूप से चुनाव कर सकते हैं वे विद्रोह का दमन भी कर सकते हैं; कि बुलेट (गोली) के बाद बैलट (मतदान पत्र) का आना ही उचित और शान्तिपूर्ण मार्ग है : और यह कि जब मतदान पत्रों दारा सांविधानिक और न्यायोचित रूप से कोई निर्णय कर लिया गया हो तब फिर गोलियों की दुहाई कदापि नहीं दी जा सकती; दी जा सकती है तो केवल आगामी चुनाव में। यह दिखा सकना शान्ति का बहुत बड़ा पाठ होगा कि जो चुनाव के द्वारा नहीं मिलता वह युद्ध के द्वारा भी नहीं मिल सकता; और इस प्रकार युद्ध का आरम्भ करने वाला बड़ी मूर्खता करता है ..

प्रार्थना दिवस की घोषणा

देश में जब गृह-युद्ध के दारुण यथार्थ परिणाम सामने आने लगे तब लिंकन ने समूचे राष्ट्र से उपवास और प्रार्थना के लिए एक दिन समर्पित करने की अपील की।

संयुक्तराज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की ओर से

घोषणा

क्योंकि संसद के दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति ने संयुक्तराज्य अमेरिका के राष्ट्रपति से भेंट कर अनुरोध किया है कि "संयुक्तराज्य की जनता द्वारा धार्मिक श्रद्धापूर्वक सार्वजनिक विनय, प्रार्थना और उपवास के लिए, और संयुक्तराज्य की रक्षा और क्षेम के

लिए सर्वशक्तिमान् ईश्वर से आतुर अनुरोध के लिए, अपनी सेनाओं के लिए, उसके आशीर्वाद के लिए, और शान्ति की शीघ्र प्रतिष्ठा के लिए विनति करने के निमित एक दिवस समर्पित किया जाये :

और क्योंकि यह उचित और शोभन है कि सभी जातियाँ सभी युगों में ईश्वर के सर्वोच्च शासन को स्वीकार करें और सम्मान दें; उसके दण्ड को विनयपूर्वक ग्रहण करें; अपने पाप और अपराध को इस भावना से स्वीकार करें और उनका अनुशोचन करें कि ईश्वर-भय ही ज्ञान का पहला चरण है; लोग अपने विगत अपराधों के लिए दीनता और आतुरता से क्षमा माँगें और अपने वर्तमान या भावी उद्योगों के लिए ईश्वर की कृपा चाहें :

और क्योंकि हमारा प्रिय देश, जो कि ईश्वर की कृपा से एक समय संयुक्त, समृद्धिशील और सुखी था, आज आपसी फूट और गृह-युद्ध से पीड़ित है, और हमें यह पहचानना उचित है कि यह दण्ड ही ईश्वर का दिया हुआ है और हमें एक राष्ट्र के और व्यक्तियों के रूप में अपने दोषों और अपराधों का खेदपूर्वक सामना करके, उसके सामने सिर झुकाकर उसकी करुणा के लिए प्रार्थना करनी चाहिए—प्रार्थना करनी चाहिए कि इस दण्ड से, भले ही हम उसके पात्र हों, छुटकारा मिलना चाहिए; कि हमारी सेना को यह आशीर्वाद और सामर्थ्य प्राप्त होना चाहिये कि विशाल देश में सर्वत्र न्याय, व्यवस्था और शान्ति की पुन: प्रतिष्ठा कर सकें; और नागरिक और धार्मिक स्वतन्त्रता का जो अमूल्य वरदान उसके निर्देश और अनुग्रह से और अपने पूर्वजों के परिश्रम और संघर्ष से हमें मिला है, उसे उसके मूल उन्नत रूप में फिर प्रतिष्ठित किया जा सके :

अतएव, मैं, अ० लिंकन, संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति, आगामी सितम्बर का अंतिम बृहस्पतिवार इसलिए निर्दिष्ट करता हूँ कि उसे सारे राष्ट्र की जनता विनय, प्रार्थना और उपवास के समर्पित करे; और मैं सारी जनता से, और विशेष रूप से सभी धर्म और सम्प्रदायों के धर्म-गुरुओं और पुजारियों से, सभी परिवारों के बड़ों से, साग्रह अनुरोध करता हूँ कि अपने-अपने धर्म-विश्वासों और पूजा पद्धतियों के अनुसार, विनय और श्रद्धापूर्वक इस दिवस के व्रत का पालन करें, जिससे सारे राष्ट्र की संयुक्त प्रार्थना उस करुणामय के सिंहासन तक पहुँच सके और हमारे देश के लिए उसकी अनुकंपा का आह्वान कर सके ।

जिसके प्रमाण में मैंने यहाँ आज १२ अगस्त १८६१, अथवा संयुक्तराज्य अमेरिका के स्वतन्त्रता के ८६वें संवत्सर में हस्ताक्षर किये हैं और संयुक्तराज्य की मुद्रा अंकित करवाई है ।

अ० लिंकन

पूंजी और श्रम के विषय में

दिसम्बर १८६१ में अमेरिकी संसद् के प्रति अपने प्रथम वार्षिक संदेश में लिंकन ने युद्ध के अतिरिक्त अनेक ऐसे विषयों की भी विवेचना की जो राष्ट्रीय कल्याण के हित में थे। इनमें एक विषय था, पूंजी और श्रम का सम्बन्ध।

श्रम का स्थान पूँजी के पूर्व और उससे स्वतन्त्र है। पूँजी श्रम का फल मात्र है, और यदि श्रम का अस्तित्व पहले से न होता तो वह अस्तित्व प्राप्त ही नहीं कर सकती थी। श्रम पूँजी से श्रेष्ठ है, और उससे अधिक महत्व का पात्र है। पूँजी के भी अपने अधिकार हैं, जो अन्यान्य अधिकारों की भांति ही रक्षणीय हैं। न इसीसे इन्कार किया जा रहा है कि श्रम और पूँजी में परस्पर ऐसा सम्बन्ध है, और सम्भवतः सदैव रहेगा, जो दोनों को हितकर है। भूल तो यह मान लेने से होती है कि समाज का समस्त श्रम इसी सम्बन्ध से बँधा है। कुछ लोगों के पास पूँजी होती है, और वे स्वयं श्रम न कर के अपनी पूँजी से कुछ दूसरे लोगों को अपने लिए श्रम करने को किराये पर--या खरीद कर रख लेते हैं। अधिकाँश ऐसे हैं जो इन दोनों में से कोई नहीं हैं—जो न दूसरों के लिए काम करते हैं न दूसरों से काम कराते हैं। अधिकांश दक्षिणी राज्यों में, सभी रंगों के लोगों का मुख्यांश न दास है न स्वामी; और उत्तरी राज्यों में अधिसंख्य लोग न किराये पर काम करने वाले हैं न कराने वाले। लोग अपने खेत पर, अपने घरों में और अपनी दूकानों में अपने बीवी, लड़कों-लड़कियों—अपने परिवार सहित काम करते हैं; जो उपज होती है वह पूरी की पूरी अपने पास रखते हैं और न पूँजी वालों से सहारा माँगते हैं न मजदूरों या दासों की मदद लेते हैं। काफी संख्या ऐसे लोगों की भी है जो अपने श्रम के साथ अपनी पूँजी भी लगाते हैं—अर्थात् अपने हाथ से भी मेहनत करते हैं और दूसरों को भी किराये पर या खरीदकर काम कराते हैं: परन्तु यह वर्ग मिश्रित ही है—स्पष्टतः अलग नहीं है। इस मिश्रित वर्ग की उपस्थिति से ऊपर लिखित कोई सिद्धान्त गलत नहीं हो जाता।

और जैसा पहले कहा भी जा चुका है, सिद्धान्ततः ऐसी कोई बात नहीं है कि किराये पर काम करने वाला स्वतन्त्र मजदूर जीवन भर वही बना रहे। आज, राज्यों में सर्वत्र जो स्वतन्त्र लोग हैं उनमें से कई, कुछ वर्ष पहले किराये पर काम करने वाले मजदूर थे। दुनिया में बेपैसा काम शुरू करने वाले समझदार नवागन्तुक कुछ दिन मजदूरी पर काम करते हैं; कुछ बचत करके अपने लिए औजार या जमीन खरीद लेते हैं, फिर अपने बूते पर ही कुछ दिन और मेहनत करते रह कर अन्त में अपनी मदद के लिए एक और नवागन्तुक को

किराये पर रख लेते हैं। यह है वह न्यायोचित, उदार और समृद्धिमूलक पद्धति जो सब के लिए मार्ग खोल देती है—जिसमें सब के लिए आशा और फलतः शक्ति, प्रगति और जीवनोन्नति का अवसर निहित है। संसार में उन से अधिक विश्वास-पात्र कौन होगा जो निर्धनता में परिश्रम करके उन्नति करते हैं और जिन्हें अपनी मेहनत की कमाई के अतिरिक्त और किसी वस्तु को छूना तक पसन्द नहीं होता।

संघीय जिले में दासों को मुक्ति

अप्रैल १८६२ में संसद ने राष्ट्र की राजधानी वाले जिले में दासों को मुक्त करके दास-प्रथा समाप्त करने की ओर पहला कदम उठाया। लिंकन ने इस कानून पर तुरन्त हस्ताक्षर कर दिये और संसद् को इसकी सूचना दे दी।

सेनेट और प्रतिनिधि सभा के सदस्य बन्धुओ—'कोलम्बिया जिले में नौकरी या मेहनत के लिए रखे गये लोगों की मुक्ति का कानून' शीर्षक कानून अनुमोदित और हस्ताक्षरित कर दिया गया है।

इस जिले में दास-प्रथा समाप्त कर देने के सांविधानिक अधिकार संसद को हैं, इसमें मैंने कभी सन्देह नहीं किया है और मैंने सदैव चाहा है कि राष्ट्रीय राजधानी किसी सन्तोष-प्रद उपाय से दास-प्रथा से मुक्त हो जाये। अतएव मेरे मन में इस विषय में कोई भी शंका नहीं रही है; रही है तो केवल यह कि सब स्थिति देखते हुए यह कार्य शीघ्र कैसे सम्पन्न हो। यदि इस कानून के अधीन या इससे अलग ऐसे मामले हों जिनको मेरी बुद्धि के अनुसार अधिक सन्तोषप्रद रूप या मार्ग दिया जा सकता था, तो मैं यहाँ उनका नाम लेने की कोई जरूरत नहीं समझता ....

दास-मुक्ति की घोषणा

२२ सितम्बर १८६२ को लिंकन ने मन्त्रिमण्डल को बुलाकर एक दस्तावेज़ सुनाया जिसका मसविदा उन्होंने स्वयं तैयार किया था। यही दास-मुक्ति की महत्त्वपूर्ण घोषणा थी।

मैं, अब्राहम लिंकन, संयुक्तराज्य अमेरिका का राष्ट्रपति और उसकी सेना और नौ सेना का प्रधान सेनापति, घोषित करता हूँ कि अब से, जैसा कि अब तक रहा है, हमारे युद्ध का उद्देश्य होगा संयुक्तराज्य और प्रत्येक ऐसे राज्य तथा उसकी जनता के बीच वैधानिक सम्बन्धों को व्यावहारिक रूप से प्रतिष्ठित करना, जिन राज्यों में ऐसे सम्बन्ध स्थगित या अव्यवस्थित हो गये हैं या होंगे;

कि मेरा निश्चय है कि संसद की अगली सभा में फिर ऐसी व्यावहारिक व्यवस्था का अनुमोदन करूँ जिसके द्वारा ऐसे सब तथाकथित दास-राज्यों को स्वेच्छा-पूर्वक स्वीकृति या अस्वीकृति के लिए आर्थिक सहायता दी जा सके, जिनकी प्रजा उस समय संयुक्तराज्य के प्रति विद्रोह न कर रही हो और जिन राज्यों ने उस समय तक स्वेच्छया यह स्वीकार कर लिया हो, या जो अनन्तर स्वेच्छया स्वीकार कर लें कि अपने राज्य की सीमा के भीतर दास-प्रथा का तत्काल या क्रमशः अन्त कर देंगे...

कि सन् १८६३ की पहली जनवरी को ऐसे किसी भी राज्य में, या राज्य के घोषित अङ्ग में, जिसकी जनता उस समय संयुक्तराज्य के विरुद्ध विद्रोह कर रही होगी, ऐसे सभी व्यक्ति जिन्हें दास बनाकर रखा गया है मुक्त हो जाएंगे और तब से हमेशा के लिए मुक्त रहेंगे; कि संयुक्तराज्य का कार्यकारी शासन, जिसमें उसकी सैनिक और नौसैनिक सत्ता भी सम्मिलित है, ऐसे व्यक्तियों की या उनमें से किसी की भी स्वतन्त्रता स्वीकार करेगी और अपनी वास्तविक स्वतन्त्रता के लिए वे जो भी उद्योग करेंगे उसमें योग देगी....

ईश्वर की इच्छा पर

ह्वाइट हाउस में रहते हुए भी लिंकन को अपने चिन्तन की उपलब्धियाँ लिख लेने का समय मिल जाता था। सितम्बर १८६२ में जब उन्होंने ईश्वरीय इच्छा के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार शब्दों में प्रकट किये तब एक पर एक पराजय और हताशा का क्रम जारी था और युद्ध का अन्त दिखायी नहीं देता था।

ईश्वर की इच्छा बलवती है। कठिन संघर्षों में उभय पक्ष दावा करते हैं कि वे ईश्वर के इच्छानुसार आचरण कर रहे हैं। पर हो सकता है कि दोनों पथ-भ्रष्ट हों, और एक तो निश्चित रूप से होगा। ईश्वर एक ही वस्तु के पक्ष में और विपक्ष में एक साथ नहीं हो सकता। प्रचलित गृह-युद्ध में, खूब सम्भव है कि ईश्वर का सोचा हुआ, उभय पक्षों के

सोचे हुए से कुछ भिन्न हो; और फिर भी मनुष्य जो कुछ कर रहे हैं वही उसकी इच्छा को कार्यरूप देने का सबसे अधिक उपयुक्त साधन हो। मैं तो कहूँगा कि यही सम्भवतः सत्य है, कि ईश्वर इस युद्ध को चाहता है, और चाहता है कि यह अभी न समाप्त हो। संघर्षरत पक्षों के मन पर अपने प्रबल प्रभाव से वह चाहता तो मानुषिक संघर्ष के बिना ही संघ को बचाना होता तो बचा लेता और मिटाना होता तो मिटा देता। परन्तु नहीं, युद्ध छिड़ा। और छिड़ा भी था तो वह चाहता तो दोनों में से किसी पक्ष को कभी भी विजय का वरदान दे सकता था। फिर भी युद्ध जारी है।

दास स्वामियों की क्षतिपूर्ति

दिसम्बर १८६२ में संसद के प्रति अपने दूसरे वार्षिक सन्देश में लिंकन ने, मुक्ति-घोषणा के वचन के अनुसार संविधान में एक संशोधन का प्रस्ताव किया जिसके अधीन जो दासता-पोषक राज्य स्वेच्छा से अपने यहाँ दास-प्रथा समाप्त कर देता उसे समस्त दासों का मुआवज़ा संघीय शासन देता। लिंकन को तब भी आशा थी कि दासता-पोषक राज्य युक्ति से और सद्भाव से संघ में वापस लाये जा सकते हैं, और यह उन्होंने अपने सन्देश में स्पष्ट कर दिया था।

"..मुझे विश्वास है कि यह योजना शुद्ध बल-प्रयोग की अपेक्षा शीघ्रतर शान्ति स्थापित करेगी और उसे स्थिरतर रूप से सुरक्षित रखेगी

तब क्या इसमें कोई संशय रह जाता है कि जिस योजना का मैं प्रस्ताव कर रहा हूँ वह युद्ध की अवधि कम करेगी, और फलतः धन और जन दोनों का अपव्यय कम होगा? तब क्या इसमें संशय रह जाता है कि वह राष्ट्रीय सत्ता और राष्ट्रीय समृद्धि दोनों को फिर से स्थायित्व देगी? तब क्या इसमें संशय रह जाता है कि हम—संसद और कार्यपालिका—उसे

स्वीकार करा सकते हैं ? क्या सज्जन लोग हमारे संयुक्त और सच्चे अनुरोध को न मानेंगे ? क्या हम और क्या वे किसी और साधन से, इस महत्वपूर्ण साध्य को इतने निश्चय से या इतनी शीघ्रता से प्राप्त कर सकते हैं ? हम सफल केवल सहयोग से होंगे। प्रश्न यह नहीं है कि—"क्या कोई आदमी इससे अच्छी सूझ दे सकता है ?" बल्कि यह है कि—"क्या हम इससे अच्छी कोई जुगत कर सकते हैं ?" जो चाहिए आपत्ति कर लीजिए, अन्त में प्रश्न यही होगा कि, "क्या हम इससे अच्छी कोई जुगत कर सकते हैं ?" निर्द्वन्द्व अतीत के मतामत, वर्तमान द्वन्द्व के लिए पर्याप्त नहीं है। आज का दिन संकट से लदा हुआ है और हमें भी उसी के बराबर खड़े होना होगा—हमारा प्रश्न नया है इस कारण हमारे समाधान और हमारे कार्य भी नए होंगे। हमें अपने बन्धन आप काटने होंगे; तभी हम अपने देश को बचा पायेंगे।

सहनागरिको—हम इतिहास से भाग नहीं सकते। हम चाहें न चाहें, संसद और प्रशासन से हम लोग याद रखे जायेंगे; हम व्यक्तिगत रूप से अच्छे हों या बुरे हों इससे कोई अन्तर न होगा। जिस अग्नि-परीक्षा से हम गुज़र रहे हैं उसका प्रकाश, भावी पीढ़ियों के लिए हमारा नाम उजले या काले अक्षरों में लिख देगा। हम कहते हैं कि हम संघ के पक्ष में हैं। संसार न भूलेगा कि हमने यह कहा था। हम जानते हैं कि संघ की रक्षा कैसे होगी। संसार जानता है कि हम अवश्य जानते हैं उसकी रक्षा कैसे होगी। हम—हां, हमीं—अधिकार भोग करते हैं और दायित्व वहन करते हैं। दास को स्वतन्त्रता देकर हम स्वतन्त्र की स्वतन्त्रता को सुरक्षित कर रहे हैं—जो हम देते हैं और जो हम बचाते हैं, दोनों ही श्रेयस्कर हैं। संसार की अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ आशा या तो बचा लेंगे और हमारा सिर ऊँचा रहेगा, या नहीं बचा पायेंगे और हमारा सिर नीचा होगा। दूसरे साधन भी सफल हो सकते हैं, पर यह अमोघ है। यह मार्ग सरल है, शान्तिमय है, उदार है, न्यायोचित है—इसका अनुसरण किया गया तो संसार की चिर-प्रशंसा और ईश्वर का चिर-आशीष इसे मिलेगा।"

एक सेनापति के नाम पत्र

युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में लिंकन का अपने सेनापतियों के नेतृत्व से असन्तोष इतिहास विदित है। सर्वोच्च अधिकारियों में परिवर्तन के अनेक अवसरों में एक पर उन्होंने संघ के मनोनीत सेनाधिपति को अपनी दो-टूक शैली में एक पत्र लिखा।

एक्जीक्यूटिव मैन्शन
वाशिंगटन, २६ जनवरी, १८६३

मेजर-जेनरल हुकर,
जेनरल :

मैंने आपको पोटोमैक सेना का प्रधान नियुक्त किया है। निस्सन्देह ऐसा करने के लिए मैं समझता हूँ कि मेरे पास यथेष्ट कारण हैं। मगर फिर भी मैं आपके हित में सर्वोचित समझता हूँ कि आपको मालूम हो कि कुछ बातें हैं जिनके सम्बन्ध में मैं आप से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हूँ। मैं आपको एक साहसी और कुशल योद्धा मानता हूँ, जो कि मेरे मन की बात है। मैं यह भी मानता हूँ कि आप अपने पेशे में राजनीति नहीं घुसेड़ते, जो कि ठीक ही है। आपको अपने पर विश्वास है, जो कि परमावश्यक नहीं तो बहुमूल्य गुण है ही। आप में महत्वाकांक्षा है, जो कि उचित मात्रा में रहे तो बुरे के बजाय भला ही करती है। पर मेरा ख्याल है कि जब जेनरल बर्नसाइड सेनाधिपति थे तो आपने अपनी महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर उनका मार्ग जितना बन पड़ा उतना अवरुद्ध करने का प्रयत्न किया, और यह, आपने देश के और एक अत्यन्त गुणी और सम्माननीय सहकर्मी के साथ अन्याय किया। मैंने सुना है, और इस प्रकार सुना है कि विश्वास हो, कि आपने हाल में ही कहा कि सेना और शासन दोनों को एक तानाशाह की जरूरत है। यह स्पष्ट है कि इस वजह से नहीं, बल्कि इसके बावजूद, मैंने आपको सेना का नेतृत्व दिया है। वे ही सेनापति तानाशाह बना सकते हैं जो सफल होकर दिखायें। इस समय आपसे मैं जो चाहता हूँ वह यह है कि आप विजय प्राप्त कर दिखावें। तानाशाही के जोखिम से मैं निपट लूँगा। शासन अपनी शक्ति भर आपका समर्थन करेगा, ठीक वैसे ही जैसे उसने सभी सेनापतियों का किया है। मुझे बड़ी आशंका है कि सेनाधिपति की आलोचना करने और उसमें विश्वास न रखने की जो भावना सेना में फैलाने में आपने मदद दी है, वह अब पलट कर आप ही पर वार करेगी। उसका दमन करने में मुझ से जहाँ तक बन पड़ेगा, मैं आपकी सहायता करूँगा। जिस सेना में ऐसी भावना फैली हो उससे आप कोई काम नहीं करा सकते—नेपोलियन भी जिन्दा होता तो न करा सकता।

और देखिये, उतावली से सावधान! उतावली से सावधान रहें, परन्तु शक्ति और अथक सजगता से आगे बढ़ें और हमें विजय प्राप्त कर दिखावें।

आपका शुभचिन्तक,
अ० लिंकन

धन्यवाद-दिवस की घोषणा

युद्ध के क्लेश और चिन्ता के मध्य में लिंकन ने राष्ट्र से अनुरोध किया कि एक दिन ईश्वर की उन कृपाओं के लिए धन्यवाद के निमित्त समर्पित किया जाये जो उन्हें तब भी प्राप्त थीं। यहाँ से वह परम्परा आरम्भ हुई जिसके अधीन धन्यवाद-दिवस संयुक्तराज्य अमेरिका का एक वार्षिक राष्ट्रीय त्यौहार हो गया है।

संयुक्तराज्य अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा

घोषणा

जो वर्ष समाप्ति की ओर जा रहा है, वह उर्वर भूमि और स्वास्थ्यप्रद जलवायु के वरदान से भरा-पूरा रहा है। इस वरदान के अतिरिक्त, जिसका सौभाग्य हमें इतने नियमित रूप से मिलता रहा है कि हम उसके मूल स्रोत को अनदेखा कर जा सकते हैं, हमें और भी वरदान मिले हैं, जो ऐसे असाधारण हैं कि वे ऐसे हृदय को भी द्रवित कर दे सकते हैं जो सर्वशक्तिमान ईश्वर के सर्वदा सजग विधान के प्रति सदैव उदासीन रहता है। अभूतपूर्व विस्तार और गम्भीरता वाले गृहयुद्ध के मध्य में, जिसे कभी-कभी विदेशी राज्यों ने आक्रमण का सुयोग समझा है, सभी राष्ट्रों के साथ हमारा शान्ति-सम्बन्ध सुरक्षित रह सका है, व्यवस्था बनी रही है, कानून और नियम का सम्मानपूर्वक पालन किया गया है, और सैनिक संग्राम के क्षेत्र को छोड़कर सर्वत्र सुव्यवस्था रही है। संग्राम का क्षेत्र संघ की बढ़ती हुई सेनाओं और नौसेनाओं ने बहुत संकुचित कर दिया है। शान्तिपूर्ण उद्योगों के क्षेत्र से सम्पत्ति और शक्ति को अनिवार्यतः राष्ट्र-रक्षा की ओर मोड़े जाने पर भी हल, करघे या जहाज रुके नहीं हैं, कुल्हाड़ी ने हमारे उपनिवेशों की सीमा को और विस्तृत किया है और लोहे, कोयले और बहुमूल्य धातुओं की खानों की पैदावार पहले से अधिक हुई है। शिविर, घेरे और संग्राम-भूमि में क्षति के बावजूद जन-संख्या निरन्तर बढ़ी है, और देश संवर्धित शक्ति और उत्साह का अनुभव करता हुआ यह आशा कर सकता है कि आगामी वर्षों में उसकी स्वतन्त्रता का बहुत विकास होगा। ये सब विशाल परिवर्तन किसी मानवीय बुद्धि या किसी मर्त्य हाथ की कृति नहीं है। यह उस परमेश्वर की असीम अनुकम्पा का परिणाम है जिसने हमारे पापों का दण्ड देते हुए भी हम पर दया रखी है। मुझे यह उचित और कर्त्तव्य जान पड़ा है कि सारी अमेरिकी जनता एक हृदय और एक वाणी से इस कृपा को गम्भीरता, श्रद्धा और कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करे। इसलिए मैं संयुक्तराज्य के हर भाग से, और सागर पार यात्रा करते हुए या विदेशों में प्रवास करते हुए अपने सह-नागरिकों को आमन्त्रित करता हूँ कि आगामी नवम्बर का अन्तिम बृहस्पतिवार आकाशलोक में बसने वाले वत्सल जगत्पिता के प्रति धन्यवाद और गुणगान के लिए समर्पित करें; और मैं उनसे यह भी अनुरोध करता हूँ

कि उसकी अनुकम्पाओं के लिए उसे समुचित धन्यवाद देते हुए और राष्ट्र की भूलों और उल्लंघनों के लिए अनुताप करते हुए हम सब उससे यही प्रार्थना करें जिस दुखद गृह-युद्ध में हम अनिवार्यतया फँसे हुए हैं उसमें विधवा, अनाथ, दुखी या संतप्त हो जाने वाले सब की रक्षा करें, और यह भी प्रार्थना करें कि राष्ट्र के घावों को भरकर दैवी विधान के अनुकूल यथासम्भव शीघ्र शान्ति, सुव्यवस्था और संघ की पुनः प्रतिष्ठा करा दें।

जिसके प्रमाणस्वरूप मैंने यहाँ अपने हस्ताक्षर और संयुक्तराज्य की मुद्रा अंकित की है।

वाशिंगटन नगर में आज तीसरी अक्तूबर सन् १८६३ को अथवा संयुक्तराज्य की स्वतन्त्रता के ८८वें संवत्सर में कृत

अ० लिंकन

गेटिसबर्ग में भाषण

१६ नवम्बर, १८६३ को लिंकन एक समाधि-स्थल के समर्पण में उपस्थित होने गेटिसबर्ग (पेंसिलवेनिया) गये। मुख्य वक्तृता तत्कालीन एक प्रसिद्ध वक्ता, एडवर्ड एवरेट को देनी थी, पर राष्ट्रपति से भी दो शब्द कहने का अनुरोध किया गया। उन्होंने जो कहा, वह इतिहास में 'गेटिसबर्ग के भाषण' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है।

सत्तासी वर्ष हुए हमारे पूर्वजों ने इस महाद्वीप पर, स्वाधीनता में उत्पन्न और इस विचार को समर्पित एक नये राष्ट्र की स्थापना की थी कि सभी मनुष्य समान सिरजे गये हैं।

आज हम एक व्यापक गृहयुद्ध में रत हैं और परीक्षा कर रहे हैं कि वह राष्ट्र या उसी भावना में उत्पन्न और अर्पित कोई राष्ट्र चिरकाल तक बना रह सकता है या नहीं। हम यहाँ उसी युद्ध के एक विराट रणस्थल पर खड़े हैं। हम उसी रणस्थल का एक अंश उनके अन्तिम विश्राम के लिए समर्पित करने आये हैं जिन्होंने राष्ट्र के जीवन की रक्षा के लिए अपना जीवन यहाँ दे दिया। यह बिल्कुल उचित और सही है कि हम ऐसा करें।

परन्तु एक व्यापकतर अर्थ में इस भूमि को हम नहीं समर्पित कर रहे, न हम उसे पवित्र या देवार्पित कर सकते हैं। इसे तो यहाँ युद्ध करने वाले जीवित या मृत वीरों ने ही इतना पवित्र

कर दिया है कि हम उसकी पावनता को घटा या बढ़ा नहीं सकते। संसार न सुनेगा न याद रखेगा कि हम यहाँ खड़े क्या कह रहे हैं, परन्तु वे यहाँ जो कर गये उसे वह कभी नहीं भूल सकता। समर्पित तो हमें, जीवित मनुष्यों को, उस कार्य के प्रति स्वयं होना चाहिये जिसे यहाँ युद्ध करने वालों ने शालीनतापूर्वक कर यहाँ तक बढ़ाया। हमें अपने सामने पड़े उस विराट कार्य के प्रति समर्पित होना है; हमें इन हुतात्माओं से उस आदर्श के प्रति और गहरी श्रद्धा ग्रहण करनी है जिसको इन्होंने अपना चरम बलिदान दिया; हमें यहाँ दृढ़ प्रतिज्ञा करनी है कि इन दिवंगत आत्माओं की वीरगति व्यर्थ न जायेगी, कि यह राष्ट्र ईश्वर के अधीन, स्वतन्त्रता का नया जन्म लेगा—और जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन संसार से उठने न पायेगा।

मानवतावादी लिंकन

राष्ट्रपति-पद के भारी दायित्व से आक्रान्त रहने पर भी लिंकन, उनसे स्नेह-याचना करने वाले सामान्य अपरिचितों के लिए कुछ समय निकाल लेते थे।

एक्जीक्यूटिव मैन्शन,
वाशिंगटन, १ मार्च, १८६४

माननीय युद्धमन्त्री,
प्रियवर,

बेयर्ड नाम की एक दरिद्र विधवा का पुत्र सेना में है जिसे किसी अपराध पर बिना वेतन के या बहुत कम वेतन पर लम्बी कैद काटने की सजा दी गयी है। वेतन न देने का यह दण्ड मुझे पसन्द नहीं है। दरिद्र परिवारों को इससे बहुत कष्ट होता है। उसे यह सजा काटते हुए कई महीने हो चुके थे कि उसकी मां ने मुझ से रोते हुए प्रार्थना की और मैंने आदेश दिया कि उसे नये सिरे से उन्हीं शर्तों पर भर्ती किया जाय जिस पर और लोग भर्ती होते हैं। वह अब आकर बताती है कि उस आदेश का पालन नहीं किया जा रहा है। कृपया यह करें।

आपका,
अ० लिंकन

स्वाधीनता के विषय में

लिंकन की भाषा में ज्वलन्त रूपकों का कितना प्रसाद युक्त उपयोग होता था, इसका एक उदाहरण अप्रैल १८६४ में बाल्टिमोर में एक स्वास्थ्य-मेले में दिये गये उनके एक भाषण के इस अंश में मिलता है ।

संसार को 'स्वाधीनता' शब्द की कोई अच्छी परिभाषा कभी नहीं मिली और इस समय अमरीकी जनता को उसकी आवश्यकता है । हम सब स्वाधीनता का पक्ष लेते हैं, परन्तु उस शब्द का हम सब अलग-अलग अर्थों में प्रयोग करते हैं । कुछ लोग स्वाधीनता शब्द से यह समझते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने से और अपनी श्रम की उपज से जो चाहे सो करने का अधिकार है । दूसरे लोग इसी शब्द से यह समझते हैं कि कुछ लोगों को अन्य लोगों से और अन्य लोगों के श्रम की उपज से जो चाहे सो करने का अधिकार है । ये स्वाधीनता के नामों से ज्ञापित दो न केवल भिन्न बल्कि विरोधी वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं और इसका अर्थ यह है कि ये दोनों वस्तुएँ दोनों पक्षों द्वारा स्वाधीनता और अत्याचार दो भिन्न और विरोधी नामों से जानी जाती हैं ।

गडरिया भेड़ को भेड़िये से बचाता है, इस पर भेड़ उसे मुक्तिदाता कह कर धन्यवाद देती है और भेड़िया उसे स्वाधीनता का संहारक कहकर निन्दा भी करता है—विशेषत: इसलिए कि भेड़ लाइलाज है । स्पष्ट है भेड़ और भेड़िया स्वाधीनता की एक परिभाषा पर सहमत नहीं हैं । और ठीक यही असहमति आज हम मनुष्यों में, यहाँ उत्तर में भी, पायी जाती है; और हम सब स्वाधीनता के पुजारी होने का दावा करते हैं । इसीलिए हम देखते हैं कि सहस्त्रों लोग पराधीनता के जुए के नीचे से प्रतिदिन निकल रहे हैं, जिसे कुछ लोग स्वाधीनता की उन्नति कह कर प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग समस्त स्वाधीनता का विनाश कहकर दुखी होते हैं ।

अवकाश प्राप्त सैनिकों से

सन् १८६४ के मध्य तक युद्ध का पलड़ा आखिरकार संघ की ओर पलट गया था और लिंकन को राष्ट्रपति-पद के लिए फिर नामज़द किया जा चुका था । उसी वर्ष अगस्त में विघटित की जाने वाली एक पुरानी रैजिमैंट के सामने, लिंकन ने एक संक्षिप्त भाषण दिया ।

"मेरे विचार से आप यहाँ से अपने परिवारों और मित्रों के पास घर जा रहे हैं। जिस महान् संघर्ष में हम संलग्न हैं उसमें आपने जो सेवा की थी उसके लिए मैं अपनी और देश की ओर से आपका हृदय से धन्यवाद देता हूँ। जब भी कभी मैं सैनिकों के सन्मुख कुछ कहता हूँ तो मेरी इच्छा उन्हें कुछ एक शब्दों में यह बताने की होती है कि इस संघर्ष में सफलता का कितना महत्त्व है। यह केवल आज के लिए ही नहीं, बल्कि चिरकाल के लिए आवश्यक है कि हम अपने बच्चों के बच्चों के लिए इस विराट और स्वतन्त्र शासन को स्थायी कर जायें जिसका हमने जीवन भर उपभोग किया है। आपसे मेरा निवेदन है कि यह स्मरण रखें, और केवल मेरे लिए ही नहीं, अपने लिए भी इसे स्मरण रखें। मैं इस भव्य 'ह्वाइट हाउस' में कुछ दिनों के लिए हूँ। मैं इस तथ्य का जीता जागता प्रमाण हूँ कि किसी दिन आपके पुत्रों में से कोई यहाँ आने की आकांक्षा करेगा जैसी कि मेरे पिता के पुत्र ने की। यह सर्वथा उचित ही है कि आपमें से प्रत्येक को इस स्वतन्त्र शासन के माध्यम से, जिसका हमने उपभोग किया है, अपने उद्योग, कार्यशीलता और प्रतिभा के लिए खुला मार्ग और न्यायोचित अवसर मिले; कि आप सब की जीवन-यात्रा में समस्त वाँछनीय मानवीय आकांक्षाओं के अनुसार समान अधिकार प्राप्त रहें। हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार छिनने न पाये, इसी उद्देश्य के लिए संघर्ष को एक नहीं, दो या तीन वर्ष तक जारी रखना होगा। ऐसे अमूल्य रत्न की प्राप्ति के निमित्त राष्ट्र के लिए युद्ध करना श्रेयस्कर है।"

ईश्वरीय दिग्दर्शन

सितम्बर १८६४ में एक परिचिता के नाम पत्र लिखते हुए लिंकन ने उस आस्था का उल्लेख किया जो युद्ध के संकट में उनको शक्ति देती रही थी।

एक्ज़ीक्यूटिव मैन्शन
वाशिंगटन, ४ सितम्बर, १८६४

एलिजा पी. गर्नी
माननीया,

मैं उस अवसर को नहीं भूला हूँ—शायद कभी भूलूँगा भी नहीं—जब आप और आपके बन्धु दो वर्ष हुए एक रविवार को सवेरे मेरे यहाँ पधारे थे। न मुझे आपका वह स्नेहसिक्त पत्र ही भूला है जो प्रायः एक वर्ष बाद आपने लिखा था। सब प्रकार से आपका उद्देश्य

ईश्वर में मेरी आस्था बढ़ाना ही रहा है। देश के सच्चे ईसाई लोगों का मैं कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने निरन्तर प्रार्थना की और धैर्य बँधाया; और उनमें किसी का इतना नहीं जितना आपका हूँ। परम पिता की इच्छा सत्य होती है, वही हुआ करती है यद्यपि हम सांसारिक प्राणी उसे पहले से समझ नहीं पाते। हमने सोचा था कि यह भयंकर युद्ध बहुत पहले ही समाप्त हो जायेगा; परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ है और उसका निर्णय कुछ और हुआ है। उसमें हम उसी का न्याय और अपनी भूल स्वीकार करते हैं। सम्प्रति, जो ज्ञान वह हमें देता है उसी के अनुसार हमें सच्चाई से कर्त्तव्य करना चाहिये और यह विश्वास रखना चाहिये कि इसी प्रकार कर्त्तव्य करने से उसके उद्देश्य की पूर्ति हम कर रहे हैं। निश्चय ही इस महान् संघर्ष का, जिसे केवल मनुष्य न चला सकता न रोक सकता, कोई सुखद परिणाम ही उसने सोचा है।

आपके बन्धुओं की—फ्रैंड्स समाज की—इस समय कठिन परीक्षा हुई है और हो रही है। सिद्धान्त और आस्था दोनों से युद्ध और दमन दोनों के विरुद्ध रहते हुए, वे दमन का विरोध व्यवहारतः केवल युद्ध से ही कर सकते हैं। इस दुस्सह धर्म-संकट में किसी ने एक पक्ष लिया है किसी ने दूसरा। जिन्होंने आत्मा के नाम पर मुझ से निवेदन किया है, उनके लिए जो कुछ मैं विधान के प्रति अपने दायित्व के अधीन कर सकता हूँ, मैंने किया है और करूँगा। आप इस का विश्वास करेंगी इसमें मुझे सन्देह नहीं। और यह विश्वास करते हुए, मुझे आशा है कि देश के लिए और स्वयं मेरे लिए परमेश्वर के प्रति आपकी सच्ची प्रार्थनाओं का सहारा मुझे मिलता रहेगा।

आपका बन्धु

अ० लिंकन

स्वतन्त्र निर्वाचन

नवम्बर १८६४ में एक स्वागत-समारोह में लिंकन ने अपने फिर चुने जाने के कारणों का विवेचन किया।

यह प्रश्न बहुत समय से हमें विचारमग्न किये हुए है कि क्या कोई शासन जो अपनी जनता की भावनाओं के प्रति आवश्यकता से अधिक निर्दय नहीं है इतना सशक्त रह सकता है कि भीषण संकट में भी अपनी सत्ता बनाये रख सके।

इस प्रश्न पर, प्रचलित विद्रोह ने हमारे जनतन्त्र की कठिन परीक्षा ली है, और विद्रोह के दौर में ही बाकायदा राष्ट्रपति का चुनाव होने से उस कठिनाई में और वृद्धि हुई है। यदि देशभक्त लोगों को एकत्र रहते हुए भी विद्रोह के विरुद्ध अपनी सारी ताकत लगानी

पड़ती है, तो आपसी राजनैतिक संघर्ष से विभाजित और अशक्त होने पर क्या वे विफल ही न हो जाते ?

परन्तु निर्वाचन अनिवार्य था।

निर्वाचन के बिना स्वतन्त्र सरकार नहीं हो सकती, और यदि विद्रोह हमें राष्ट्रीय निर्वाचन को स्थगित कर देने या छोड़ देने पर मजबूर कर सका होता तो इसका अर्थ यही होता कि उसने हमें पराजित और नष्ट कर दिया है। निर्वाचन में जो कुछ संघर्ष होता है वह मानव-स्वभाव का ही परिस्थिति-जन्य प्रतिबिम्ब होता है। जो इस परिस्थिति में हुआ है, वही समान परिस्थिति में फिर होगा। मानव-स्वभाव बदल नहीं सकता। भविष्य में कोई महान् राष्ट्रीय संकट आये तो आज की ही भाँति तब भी, इतने ही दुर्बल, इतने ही बलवान, इतने ही मूर्ख, इतने ही विद्वान, इतने ही अच्छे, इतने ही बुरे लोग तब भी प्रकट होंगे। इसलिए हम इस निर्वाचन की घटनाओं को दार्शनिक दृष्टि से देख कर उससे शिक्षा ग्रहण करें, उन्हें प्रतिशोध्य न मानें।

परन्तु निर्वाचन में, जहाँ कुछ न कुछ अवांछनीय संघर्ष हुआ है, वहाँ कुछ अच्छा भी किया है। उसने दिखा दिया है कि जनता का शासन, व्यापक गृह-युद्ध के मध्य भी राष्ट्रीय निर्वाचन का बोझ उठा सकता है। अभी तक संसार को यह ज्ञात न था कि ऐसा भी सम्भव है। इससे यह प्रकट हो जाता है कि हम आज भी कितने पोढ़े और मजबूत हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि एक ही दल के उम्मीदवारों में भी उसी को जनता के सबसे अधिक मत प्राप्त हो सकते हैं जो संघ का सबसे अधिक भक्त हो और देश-द्रोह के सबसे अधिक विरुद्ध हो। इससे यह भी प्रमाणित हो गया है कि इस समय, हमारे पक्ष में युद्ध आरम्भ होने के समय से अधिक जन हैं। सोना भी अपनी जगह अच्छी चीज है, पर जीवन्त, साहसी, देशभक्त जन सोने से बढ़कर हैं।

तो भी, विद्रोह अभी चालू है। और अब जब कि निर्वाचन पूरा हो चुका है, वे सब जिनका लक्ष्य एक ही है, एक साथ मिल कर अपने देश की रक्षा में क्यों न जुट जायें? जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने प्रयत्न किया है और करता रहूँगा कि मार्ग में कोई बाधा न दूँ। जितने दिन मैं इस पद पर रहा हूँ मैंने जानते-बूझते किसी के हृदय को चोट नहीं पहुँचायी है।

मैं यह सोच कर कृतार्थ होता हूँ कि आपने मुझे फिर से चुने जाने योग्य समझा; साथ ही परमेश्वर का कृतज्ञ हूँ कि उसने मेरे देशवासियों को उस सत्य-पथ का निर्देश किया जिस पर चलना मेरी समझ में उनके लिए हितकर है; किन्तु यह सोच कर मुझे सन्तोष नहीं है कि निर्वाचन के परिणाम से किसी दूसरे व्यक्ति को निराशा या पीड़ा हुई होगी।

क्या जो मुझसे असहमत नहीं रहे हैं उनसे मैं अनुरोध करूँ कि उनके प्रति जो असहमत रहे हैं, यही भावना रखें, जैसी कि मैं रख रहा हूँ ? अन्त में, आपसे कहूँगा कि हमारे साहसी सैनिकों और नाविकों तथा उनके शूरवीर और चतुर सेनापतियों का तीन बार जय जयकार करें।

एक मां के नाम पत्र

लिंकन द्वारा लिखित सब पत्रों में इतना अधिक शायद कोई नहीं प्रकाशित हुआ होगा, और न एक के बाद एक पीढ़ी द्वारा इतनी अधिक श्रद्धा से पढ़ा गया होगा, जितना युद्ध में पाँच पुत्रों की आहुति देने वाली इस मां के प्रति समवेदना का यह पत्र।

एक्जीक्यूटिव मैन्शन
वाशिंगटन, २१ नवम्बर, १८६४

प्रिय महोदया,

मुझे, युद्ध-विभाग की फाइलों में मैसाचुसेट्स एडजुटैंट जनरल का यह वक्तव्य दिखाया गया है कि आपके पाँच पुत्र युद्ध-क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुए हैं।

इतने बड़े दुःख में आपको सान्त्वना देने के लिए जो कुछ मैं कहूँगा वह कितना व्यर्थ और निस्सार होगा! परन्तु मैं वह सान्त्वना आप तक पहुँचाये बिना नहीं रह सकता जो आपको यह जान कर होगी कि जिस जनतन्त्र की रक्षा करते हुए वे खेत रहे वह उनका कृतज्ञ है।

मेरी प्रार्थना है कि हमारा स्वर्गस्थित पिता आपके दुःख की वेदना का शमन करे, आपके मन में अपने विगत प्रियजनों की सुखद स्मृति ही रह जाये, और रह जाये स्वतन्त्रता की वेदी पर इतनी अमूल्य बलि चढ़ाने का गर्व, जो आपको अवश्य होगा।

आपका, सस्नेह और सादर,
अ० लिंकन

'समाचार-लेखक' के रूप में

एक दिन दिसम्बर १८६४ की बात है कि लिंकन ने एक समाचारपत्र के संवाददाता को बुलवाया और उसे एक समाचार देकर, जो स्वयं उन्होंने शीर्षक

आदि से सुसज्जित करके लिखा था, कहा कि वह चाहे तो इसे छाप सकता है।

राष्ट्रपति का अन्तिम, संक्षिप्ततम और श्रेष्ठतम भाषण

गत सप्ताह बृहस्पतिवार को टेनेसी की दो स्त्रियाँ राष्ट्रपति के सम्मुख आयीं और उन्होंने जानसन द्वीप में युद्ध-बन्दियों के रूप में कैद अपने पतियों की मुक्ति की प्रार्थना की। उन्हें शुक्रवार को आने को कहा गया। वे आयीं और उन्हें फिर शनिवार को आने को कह दिया गया। दोनों बार की भेंट में एक स्त्री यही कहती रही कि मेरे पति धर्मात्मा हैं। शनिवार को राष्ट्रपति ने उन बन्दियों की मुक्ति की आज्ञा दे दी और तब इस स्त्री से कहा, "तुम कहती हो कि तुम्हारे पति धर्मात्मा हैं; जब उनसे मिलना तो कह देना कि मैंने कहा है कि धर्म का पारखी तो मैं नहीं हूँ, लेकिन मेरी राय में जो धर्म लोगों को अपने शासन से इस लिए विद्रोह और युद्ध करने को कहता है कि शासन कुछ लोगों को दूसरे लोगों के पसीने से कमायी रोटी खाने में यथेष्ट मदद नहीं करता, जैसा उनका ख्याल है, तो वह ऐसा धर्म नहीं है जिसके बल पर कोई स्वर्ग जा सकता है।

अ० लिंकन

द्वितीय सभारम्भ भाषण

४ मार्च, १८६५ को लिंकन ने दूसरी बार राष्ट्रपति पद के कार्य-भार की शपथ ग्रहण की और अपना दूसरा सभारम्भ भाषण दिया। युद्ध जारी था, तथापि विजय के लक्षण दिखायी देने लगे थे और लिंकन उनको जिन्होंने शत्रुता

की थी—'किसी के प्रति द्वेष के बिना और सबके प्रति दया रखकर' संघ में वापस लाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह संक्षिप्त भाषण लिंकन के श्रेष्ठ भाषणों में गिना जाता है।

राष्ट्रपति-पद की शपथ लेने आज दूसरी बार उपस्थित होते समय, पहली बार की अपेक्षा छोटा ही भाषण करना समीचीन है। तब, आगामी कार्यक्रम का बहुत कुछ विवरण आवश्यक और संगत था। अब, चार वर्ष की अवधि के बाद, जिसमें उस महाद्वन्द्व के प्रत्येक चरण पर जो आज भी राष्ट्र की शक्ति को व्यस्त रखता है और उस के मन को चिन्तित, नया कुछ कहने को नहीं है। हमारी सेना की प्रगति, जिस पर सभी कुछ मुख्यतः निर्भर है, जनता को उतनी ही विदित है जितनी मुझे; और मैं समझता हूँ कि वह सब को सन्तोष और उत्साह देने वाली है। भविष्य के प्रति बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं, इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता।

चार वर्ष पहले ऐसे ही अवसर पर सब लोग आसन्न गृह-युद्ध की चिन्ता से ग्रस्त थे। सब उससे भयभीत थे। सब उसे टालना चाहते थे। जिस समय इस स्थान से संघ को बिना युद्ध के बचा लेने का लक्ष्य लेकर सभारम्भ-भाषण किया जा रहा था, विद्रोहियों के चर संघ को बिना युद्ध के नष्ट कर देने का लक्ष्य लेकर नगर में घूम रहे थे और चाहते थे कि संघ को भंग करके उसका बंटवारा कर लिया जाये! दोनों पक्ष युद्ध की निन्दा करते थे, पर उनमें से एक चाहता था कि राष्ट्र न बचे, चाहे युद्ध छेड़ना पड़े, और दूसरा चाहता था कि राष्ट्र मरने न पाये चाहे युद्ध स्वीकार करना पड़े। और युद्ध हुआ।

समस्त जन संख्या का आठवाँ भाग अश्वेत (काला) और दास था, जो संघ भर में न फैला होकर दक्षिण भाग में बसा था। एक विलक्षण प्रबल स्वार्थ इस दास-वर्ग में व्यस्त था। सभी जानते थे कि किसी न किसी तरह यही स्वार्थ युद्ध का कारण है। इस स्वार्थ को शक्ति, स्थायित्व और विस्तार देना वह उद्देश्य था जिसके लिए विद्रोही, संघ को युद्ध से ही सही टुकड़े-टुकड़े कर डालने पर तैयार थे; उधर शासन का केवल यह आग्रह था कि दास-प्रथा दूसरे क्षेत्रों में न फैलने दी जायेगी। दोनों में से कोई पक्ष नहीं जानता था कि युद्ध इतने काल तक चलेगा या इतना विकराल रूप ले लेगा जितना कि इस समय तक वह ले चुका है। दोनों में से किसी ने न सोचा था कि द्वन्द्व का कारण, द्वन्द्व शेष होने के साथ-साथ या पहले ही समाप्त हो जा सकता है। दोनों समझते थे विजय आसानी से हाथ लगेगी; और परिणाम इतना गहरा एवं इतना चौंका देने वाला होगा इसकी कल्पना उन्होंने न की थी। दोनों वही बाइबिल पढ़ते थे, उसी ईश्वर से प्रार्थना करते थे, और एक दूसरे के विरुद्ध उस

की सहायता मांगते थे। यह विचित्र लगता है कि कोई व्यक्ति दूसरे के पसीने की रोटी छीनने में न्यायमूर्ति ईश्वर से सहायता माँगे, पर हम इसका विचार न करें, क्योंकि हमारा भी निर्णय कोई कर सकता है। दोनों पक्षों की प्रार्थना ईश्वर मान नहीं सकता था; न दोनों में से किसी की उसने पूरी तरह मानी है। उसकी कुछ और ही इच्छा है।

"दुःख पड़े उस दुनिया पर जो पाप से भरी पड़ी है! क्योंकि पाप अवश्यम्भावी है; मगर दुख पड़े उस आदमी पर जिसके हाथों पाप होता है।" यदि हम मान लें कि अमेरिकी दास-प्रथा एक ऐसा पाप है जो ईश्वर के विधान में अवश्यम्भावी तो है लेकिन जो ईश्वर द्वारा नियत अवधि काट चुका है और जिसे ईश्वर अब समाप्त कर देना चाहता है, तथा यह कि जो इस पाप के कर्ता थे उन्हें दण्ड देने के लिए ही उसने उत्तर और दक्षिण दोनों को यह भीषण युद्ध दिया है, तो क्या यह उस ईश्वरीय प्रवृत्ति से कुछ भिन्न माना जायेगा जिसे अन्तर्यामी ईश्वर में आस्था रखने वाले सदैव ईश्वर का श्रेय मानते हैं? हमारी लालसा है, हमारी अरदास है कि युद्ध का यह महासंकट शीघ्र कट जाये। किन्तु यदि ईश्वर की इच्छा है कि वह तब तक जारी रहे जब तक नरस्वामियों की ढाई सौ वर्ष की बेगार की कमाई पानी में न मिल जावे और जब तक कोड़े की मार से गिरी खून की हर बूँद का बदला तलवार की मार से गिरे खून से न मिल जाये तो जैसा तीन हजार वर्ष हुए कहा गया था, वैसा ही आज भी कहा जायेगा, "ईश्वर के निर्णय सम्पूर्णतया सत्य और न्याय के निर्णय होते हैं।"

किसी के प्रति द्वेष के बिना, और सब के प्रति दया रखकर, सत्य के उस पथ पर दृढ़ रह कर जो ईश्वर ने हमें दिखाया है, हम प्रयत्न करें कि हमारा अधूरा काम पूरा हो। देश के घाव भरें, युद्ध का अभिशाप जिसने झेला उसकी, उसकी विधवा स्त्री और अनाथ बच्चे की रक्षा हो, और वे सब कार्य सम्पन्न हों जिनसे हमारे अपने मध्य एवं हमारे और अन्यान्य राष्ट्रों के मध्य न्यायोचित और स्थायी शान्ति स्थापित होगी।

पुनर्निर्माण पर

युद्ध अप्रैल १८६५ में समाप्त हो गया, और अन्तिम आत्म-समर्पण के दो रातों बाद लिंकन ने कुछ लोगों के सम्मुख जो ह्वाइट हाउस में उनकी अभ्यर्थना

करने आये थे, भाषण किया। उपस्थित समुदाय को लिंकन से विजयोल्लास की आशा थी; पर लिंकन, जो इस समय, सबको कम से कम दुख पहुँचाते हुए पुराने पारस्परिक सम्बन्ध फिर स्थापित करने में दत्तचित्त थे, गम्भीर रहे। उन्होंने विजय का उल्लेख नहीं के बराबर किया, आगे पड़े काम का अधिक किया। उस रात कौन जानता था कि जिस कार्य के प्रति वह अपने को अर्पित कर रहे थे वह तीन रात बाद ही एक हत्यारे की गोली द्वारा उनके हाथ से छिन जायेगा! यह उनका अन्तिम सार्वजनिक भाषण था।

"आज शाम को हम यहाँ दुखी होकर नहीं मिल रहे, हमारे हृदय प्रसन्न हैं। पीटर्सबर्ग और रिचमंड से शत्रु का पलायन और मुख्य विद्रोही सेना का आत्मसमर्पण होने से आशा बँधती है कि शीघ्र ही न्यायोचित शान्ति की स्थापना हो सकेगी, और इस आशा को प्रकट होने से रोका नहीं जा सकता। परन्तु इसके मध्य, उसको हमें न भूल जाना चाहिए जो समस्त सुखों का मूल स्रोत है। राष्ट्र की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन की घोषणा लिखी जा रही है और समय आने पर प्रचारित की जायेगी....

युद्ध में हाल की इन सफलताओं के बाद अब राष्ट्रीय शक्ति को फिर से पुनर्निर्माण के काम में लगाने की ओर हमारा और अधिक ध्यान जाता है—यद्यपि पहली सफलता के बाद से ही हम उस पर काफी सोचते रहे हैं। इसमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं। दो स्वतन्त्र राष्ट्रों में युद्ध हुआ होता, तो और बात थी; पर यहाँ हमारे सामने कोई अधिकृत शत्रु नहीं है जिससे व्यवहार किया जाये। किसी व्यक्ति को सबकी ओर से विद्रोह छोड़ देने का अधिकार नहीं है; हमें तो असंगठित और असंगत तत्त्वों को ही लेकर उनका निर्माण करना है। और यह देखकर भी कुछ कम चिन्ता नहीं होती है कि हम देशभक्त जन भी पुनर्निर्माण के रूप, पद्धति और साधन के विषय में एक दूसरे से असहमत हैं....

हम सब सहमत हैं कि पृथक् कहे जाने वाले राज्यों का संघ से उचित व्यावहारिक सम्बन्ध नहीं रह गया है, और सैनिक और असैनिक शासन का उन राज्यों के प्रति एक यही उद्देश्य है कि उनसे फिर उचित व्यावहारिक सम्बन्ध स्थापित किया जाये।

मैं समझता हूँ कि यह सम्भव तो है ही, सरलतर भी है यदि इस पर ध्यान ही न दें न विचार ही करें कि ये राज्य संघ के बाहर थे या भीतर। यदि उन्हें अपने घर पर सुरक्षित होने का अनुभव मिले तो इसका बिल्कुल महत्त्व न होगा कि वे कभी बाहर भी थे। हम सब मिलकर ऐसे काम करें जो इन राज्यों और संघ में उचित व्यावहारिक सम्बन्ध फिर स्थापित

करने के लिए आवश्यक हैं, फिर बाद में चाहे हम लोग अलग-अलग अपनी सोच करें कि हम इन राज्यों को बाहर से अन्दर लाये या कि वे बाहर कभी गये ही नहीं और उन्हें हमने केवल आवश्यक सहायता ही दी है।''

जीवन के अन्तिम दिन की एक बात

१४ अप्रैल, १८६५ को, अपने जीवन के अन्तिम दिन, लिंकन ने अनेक सन्देश और स्मरणार्थ अनेक बातें लिखीं। इनमें से एक जेनरल जेम्स एच० वान एलेन के नाम एक सन्देश था।

वाशिंगटन, १४ अप्रैल, १८६५

प्रिय महोदय,

मैं मित्रों की राय मान कर आवश्यक ऐहतियात बरतूँगा...आपके इस आश्वासन के लिए आपको धन्यवाद देता हूँ कि आप जैसे परम्परानुयायी मुझे उन कामों में मदद देंगे जो मैं आपकी भाषा में कहूँ तो, संघ के राज्यों के ही नहीं, हाथों और हृदयों के संघ के पुनःसंस्थापन के लिए करूँगा।

आपका,

अ० लिंकन

दाहिनी ओर का चित्र राष्ट्र की राजधानी वाशिंगटन में प्रतिष्ठित लिंकन की भव्य-मूर्ति की एक प्रतिछवि है।

IN THIS TEMPLE
AS IN THE HEARTS OF THE PEOPLE
FOR WHOM HE SAVED THE UNION
THE MEMORY OF ABRAHAM LINCOLN
IS ENSHRINED FOREVER